दमा

एक अनबूझ पहेली

लोकोपयोगी विज्ञान

दमा

एक अनबूझ पहेली

इसे कैसे नियंत्रित करें

एम. पी. एस. मेनन

अनुवाद

चन्द्रभान शर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

प्रस्तावना

एक प्रतिशत भारतीय दमा के संभावित रोगी हैं। यह वास्तव में एक बहुत बड़ी संख्या है। इनमें से बहुत से हर रोज औषधि का सेवन करते हैं और कितने ही नियमित रूप से विभिन्न चिकित्सकों व विशेषज्ञों से सलाह लेते हैं। यह जानते हुए भी कि इस पुरातन रोग का कोई निश्चित इलाज नहीं है, रोगियों की चिकित्सकों पर निर्भरता कम नहीं हुई है और न ही चिकित्सकों का यह विश्वास ही कम हुआ है कि वे अपने रोगियों को स्वस्थ कर सकते हैं।

जिन व्यक्तियों को दमा में विशेष रुचि है वे मानते हैं कि इस रोग को नियंत्रित करने का सबसे अच्छा तरीका रोगियों को स्वयं अपनी देखभाल करना सिखाना, उपलब्ध दवाओं को इस्तेमाल करने के बारे में जानकारी देना तथा उस स्थिति का ज्ञान कराना है, जब वे चिकित्सक की मदद लें। इस उद्देश्य की पूर्ति कई बातों पर निर्भर करती है : (1) स्वयं चिकित्सकों को दमा रोग तथा साथ ही सभी प्रकार के उपचारों से उत्पन्न पक्षीय प्रभावों की स्पष्ट समझ होनी चाहिए; (2) उनमें रोगियों को जानकारी देने व शिक्षित करने की भावना होनी चाहिए; (3) साथ ही रोगियों में भी अपने रोग की बुद्धिमता से तथा सही रूप से देखभाल करने संबंधी जानकारी लेने की रुचि होनी चाहिए।

यह पुस्तक मुख्यतया रोगियों को ध्यान में रखकर लिखी गयी है ताकि उन्हें इस रोग के बारे में स्पष्ट व आधुनिकतम जानकारी मिल सके। रोग के विभिन्न पहलुओं को सवाल-जवाब के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मैं समझता हूं यह विधि रोगियों को अधिक पसंद आयेगी।

मेरा विश्वास है कि इससे शिक्षित रोगियों, स्नातक विद्यार्थियों तथा सामान्य चिकित्सकों, जिन्हें इस बीमारी की बारीकियों को जानने की ललक है, की आवश्यकता पूरी हो सकेगी। मैंने अधिकारिक तरीकों से जानबूझ कर बचने का प्रयत्न किया है, परंतु जहां मैंने समझा कि कोई सूचना रोगियों के लाभ की हो सकती है तो मैंने अपने आंकड़ों और मान्यताओं को प्रस्तुत करने में कोई हिचक नहीं दिखाई। मेरा विश्वास है कि दमा रोगी, उनके संबंधी, सामान्य चिकित्सक, विद्यार्थी तथा चिकित्सा से संबंधित क्षेत्रों के व्यक्ति इसे रोचकता से पढ़ेंगे।

यदि यह छोटी-सी पुस्तक पाठकों की दमा रोग के बारे में जानकारी बढ़ाने तथा दमा रोगियों को चिकित्सकों पर निर्भर हुए बिना सामान्य जीवन-यापन करने में सहयोगी हुई तो मैं इस पुस्तक के उद्देश्य को सफल मानूंगा।

मैं स्व. कृष्ण कृपलानी तथा डा. पी. एल. मल्होत्रा के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं जिन्होंने पांडुलिपि पढ़कर अनेकों महत्वपूर्ण सुझाव दिये। मैं प्रो. इयान ग्रेग (कार्डियो-थोरेसिक इंस्टीट्यूट, ब्रोम्पटन, लंदन) का भी अत्यंत आभारी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक के आंकड़ों की जांच करने में अपना बहुमूल्य समय लगाया। मैं श्री संजय मजूमदार का चित्रों को उपलब्ध कराने के लिए कृतज्ञ हूं। मैं इस पुस्तक के प्रकाशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया का उनके सहयोग और मार्गदर्शन के लिए आभारी हूं।

यह पुस्तक छाया और कुंजू को समर्पित, जो मेरे प्रेरणा-स्रोत हैं और जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने में मेरी बहुत सहायता की।

7 दिसंबर, 1981 **एम. पी. एस. मेनन**

1

दमा क्या है?

जब मेरे कुछ मित्रों और रोगियों ने मुझसे दमा पर एक लेख लिखने का आग्रह किया तो मैं एकदम तैयार हो गया। परंतु जब लिखने की बारी आयी तो तमिल भाषा का यह कथन "कट्रेथु कैमन्नलवु, कल्लतुदु उला कालवु*" मेरे मस्तिष्क में कौंध गया, क्योंकि दमा के कारणों एवं उसके उपचार के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम और सीमित है। मुझे लगा कि कहीं इस रोग पर लिखा मेरा लेख मेरी अज्ञानता का द्योतक ही न बनकर रह जाये। पर भगवान श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये निम्न उपदेश के बारे में सोचते ही मेरा भ्रम स्वयं ही दूर हो गया :

**कर्मणो ह्यापि बोद्धव्यं
बोद्धव्यं च विकर्मणः
अकर्मणाश्च बोद्धव्यं
गहना कर्मणो गतिः (1)

अतः मैंने कार्य को आगे बढ़ाने तथा तत्कालीन जानकारी के आधार पर इस रोग का सही निरूपण करने का निश्चय कर लिया।

अस्थमा (दमा) मूलतः ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका मतलब है हांफना या मुंह खोल कर सांस लेना। परंतु हांफना या मुंह खोलकर सांस लेना ही अस्थमा नहीं है। किसी अन्य उचित शब्द के अभाव में इसे स्वीकार कर लिया गया है। यह एक सामान्य रोग है तथा संसार की लगभग 1 प्रतिशत आबादी इससे ग्रसित है। पपुआ-न्यूगाइना या

---

* *हमारा ज्ञान तो मुट्ठी भर है और अज्ञान पूरे विश्व के बराबर।*

** *सामान्यतया सही मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रचलित विचार-परंपरागत धारणाएं तथा अंतर्मन की पुकार एक दूसरे में मिलकर हमें भ्रमित कर देते हैं। ऐसी स्थिति में ज्ञानीजन अकाट्य सत्य और गहन तर्कों का सहारा ले अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं।*

सर्वपल्ली राधाकृष्णन

आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की तुलना में तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले समाजों में यह रोग अधिक प्रचलित है। बहुधा यह रोग हल्का ही होता है, परंतु कभी-कभी अत्यंत भयंकर रूप भी धारण कर लेता है। भयंकर होने की स्थिति में रोगी की मृत्यु हो जाना भी अस्वाभाविक नहीं है।

दमा का उपचार करने वालों की एक सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह है कि वे रोगियों को इस बीमारी से स्वयं निपटने के बारे में शिक्षित करें तथा उन्हें बतायें कि चिकित्सा सहायता किस समय लेनी चाहिए। इसका तात्पर्य है कि चिकित्सक को रोगी की व्यक्तिगत समस्या को समझना चाहिए तथा उसे उन प्रतिबंधों को रोगी पर लागू नहीं करना चाहिए जो रोग की विशेष अवस्था में लगाये जाते हैं तथा जो अवस्था उस समय रोगी की नहीं है। बहुत से रोगी, जो जीवन-पर्यंत इस रोग से पीड़ित रहे हैं, अपनी इस समस्या के बारे में किसी भी चिकित्सक से अधिक जानकारी रखते हैं। ऐसी स्थिति में रोगी को चुप्पी साधने तथा चिकित्सक को चमत्कार दिखाने की भावना से दूर ही रहना चाहिए। समर्पित, सहानुभूतिपूर्ण निजी चिकित्सक रोगी के लिए बड़े काम के सिद्ध हो सकते हैं। यदि चिकित्सक अपने अनुभवों को लिपिबद्ध भी कर दें तो इस कठिन रोग को समझने में इससे काफी मदद मिल सकती है। दमा का उपचार करने वाले सभी व्यक्तियों को ऐसे सामान्य चिकित्सकों द्वारा लिखित पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए। हालांकि उन पुस्तकों की सामग्री आज के युग में बेशक अधिक प्रासंगिक न लगे, परंतु जिस भावना से अनुभवों पर आधारित ये पुस्तकें लिखी गयी हैं, वह प्रशंसनीय है।

यदि यह बात रोगियों को दमा रोग को समझने की प्रेरणा देने तथा उन्हें सामान्य जीवन व्यतीत करने में सहयोग देती है और साथ ही चिकित्सकों को 'रोगियों की सहायता कैसे की जाये' की जानकारी भी प्रदान करती है, तो इसका उद्देश्य काफी कुछ पूरा हो जायेगा।

किस रोगी को दमा रोग से पीड़ित कहा जायेगा ?

रोगों का नामकरण वास्तव में किसी वर्ग के अंतर्गत लक्षणों व चिन्हों का सूचक है तथा उसका तत्संबंधी संरचनात्मक व क्रियात्मक असामान्यताओं से गहरा संबंध है। अतः प्रचलित रोगविज्ञान के अनुसार रोगियों को वर्गीकृत करने और अंततः उनके रोगों को परिभाषित करने के जो क्रमबद्ध संभावित आधार हैं, वे हैं--रोगलक्षण विवरण, विशेष संरचनात्मक एवं क्रियात्मक विसंगतियां तथा रोगोत्पादन के कारण। दमा को परिभाषित करने के सभी पूर्व प्रयत्न निष्फल रहे हैं क्योंकि उन्हें सभी प्रतिभागियों का समर्थन नहीं मिला। परंतु आज दमा शब्द सभी सामान्य तथा तकनीकी परिसंवादों में प्रयोग किया जाता है। किसी भी प्रस्तावित परिभाषा का इस सामान्य रूप से प्रयोग में आने वाले शब्द से विरोध नहीं होना चाहिए। यद्यपि पहले दमा शब्द सांस लेने में किसी भी प्रकार की असुविधा के संदर्भ में उपयोग होता था, लेकिन आज सर्वसम्मति से इसे उन रोगियों के लिए प्रयुक्त

किया जाता है जिन्हें सांस लेने में परिवर्तनीय असुविधा होती है तथा फेफड़ों की श्वास नलियों में वायु के प्रवाह में गतिरोध पैदा होता है।

सभी दमा पीड़ितों के सामान्य लक्षण क्या हैं ?

ये सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

क. प्रासंगिक श्वसनहीनता, जिसकी उग्रता स्वतः या उपचार से बदलती रहती है,

ख. श्वास निकालते समय सीटी बजने की सी आवाज आना, तथा

ग. फेफड़ों की वायु नलिकाओं में वायु के प्रवाह में परिवर्तनीय रुकावट जो अनुभव की जा सकती है।

श्वसनिका दमा (ब्रोंकियल अस्थमा) क्या है ? क्या दमे की विभिन्न किस्में हैं ?

प्रारंभ में दमा शब्द का प्रयोग सभी प्रकार की श्वसनहीनता की स्थितियों के लिए किया जाता था, परंतु आजकल इसे केवल श्वसनिका दमा के लिए ही प्रयोग में लाते हैं। इस स्थिति में वायु के प्रवाह में विस्तृत गतिरोध स्पष्ट दिखाई देता है। विभिन्न कारणों तथा रोग की उग्रता पर आधारित दमा रोग को वर्गीकृत करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं, परंतु कई मामलों में इसके उत्पन्न होने का कोई निश्चित कारण ज्ञात नहीं हो सका है। आजकल इसकी निम्न किस्मों की पहचान करना लाभदायक है :

क. बहिरस्थ एटोपिक दमा

इस वर्ग में वे रोगी आते हैं जिनमें कई प्रकार की एलर्जी विकसित होने की जन्मजात संभावना होती है। इसके उदाहरण हैं बाल्य एग्जीमा, मौसमी या वर्ष पर्यंत रहने वाला जुकाम (नासाशोथ) तथा पर्यावरण में उपस्थित एलर्जनों (परागकण, धूल, डेन्डट, कवक बीजाणु, आदि) के संपर्क में आने पर पैदा होने वाला दमा। इन रोगियों में तीनों व्याधियां (दमा, नासाशोथ तथा एग्जीमा) एक साथ भी हो सकती हैं और विशेष समय पर अलग-अलग भी। इस आनुवंशिक संभावना के कारण ऐसे रोगियों में इम्यूनोग्लोबुलिन-ई नामक एक प्रतिपिंड (एंटीबाडी) विकसित हो जाता है। यह प्रतिपिंड नासिका, त्वचा या श्वास नलिकाओं की लक्ष्य कोशिकाओं (मास्ट कोशिकाओं या बेसोफिल्स) से जुड़ जाता है। शरीर में प्रवेश करने के बाद किसी भी एलर्जन में अपने ही विरुद्ध प्रभावशाली एक विशेष इम्यूनोग्लोबुलिन-ई उत्पन्न करने का गुण होता है। लक्ष्य कोशिका, जिसमें इम्यूनोग्लोबुलिन स्थापित किया जाता है, संवेदित कोशिका कहलाती है। जब कभी शरीर से पुनः इस एलर्जन का संसर्ग होता है तो ये सारे के सारे एलर्जन इम्यूनोग्लोबुलिन-ई के अणुओं द्वारा, जो लक्ष्य कोशिकाओं पर पहले से मौजूद हैं, गिरफ्त में ले लिए जाते हैं (देखिए, चित्र-1)।

एलर्जन-प्रतिपिंड प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन कोशिकाओं से विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थों का निष्कासन होता है। यदि यह निष्कासन श्वास नलिकाओं में होता है तो श्वसनी की कोमल मांसपेशियां सिकुड़ जाती हैं तथा आंतरिक श्लेष्मा में सूजन आ जाती है, जिससे सांस लेने में, अवरोध पैदा हो जाता है तथा सीटी बजने की सी आवाज आने लगती है।
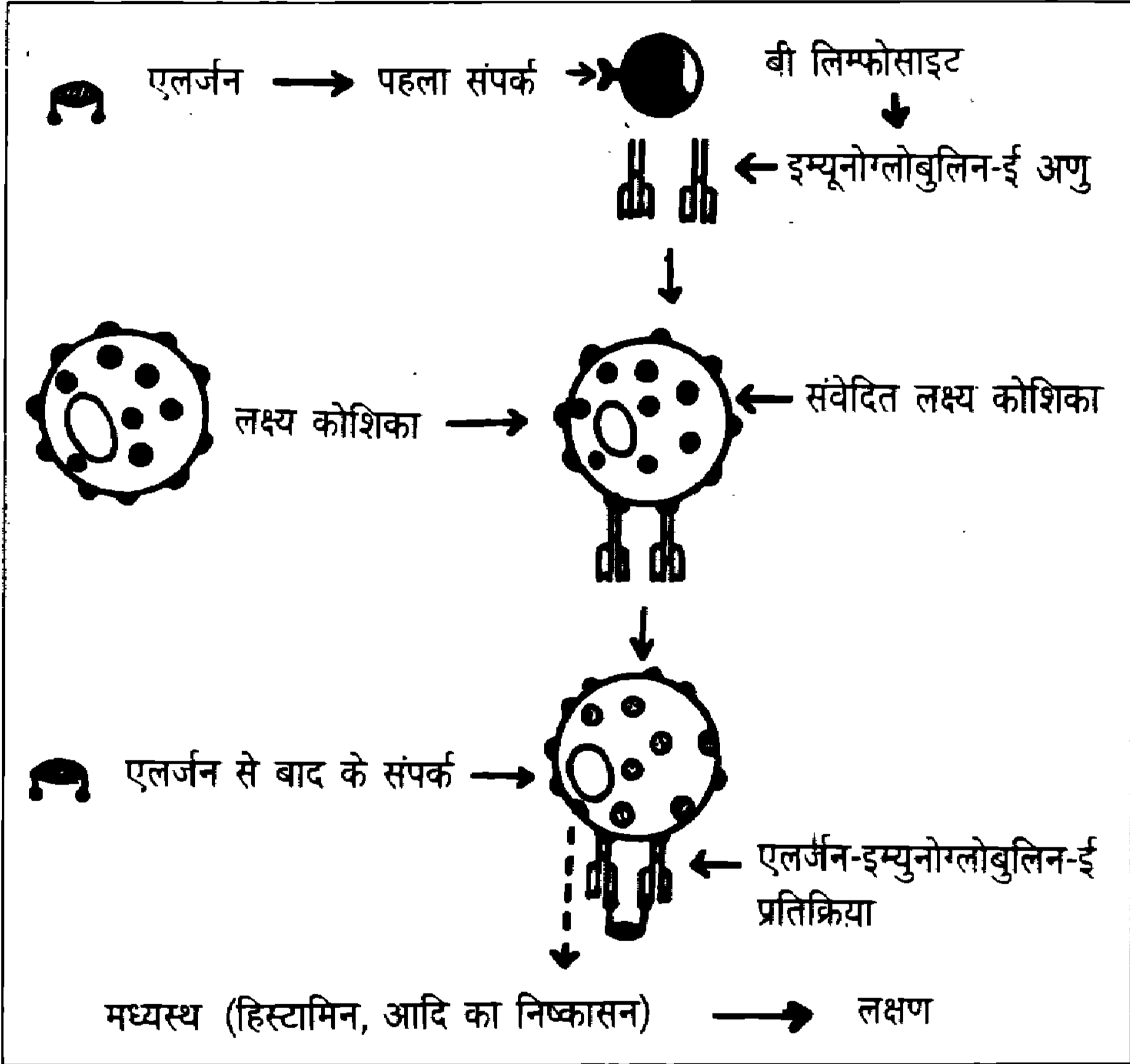
चित्र-1 *शीघ्र एलर्जी पैदा होने की प्रक्रिया। एलर्जन और प्रतिपिंड (आई जी-ई) की प्रतिक्रियास्वरूप लक्ष्य कोशिका से अंतःस्राव।*

इसी प्रकार यदि यह प्रक्रिया नासिका में होती है तो छींकें आने लगती हैं, नाक बंद हो जाती है तथा जुकाम लग जाता है। त्वचा में इस प्रक्रिया के होने पर खुजली, सूजन आदि हो जाती है।

अनुमान है कि पर्यावरण में पाये जाने वाले सामान्य एलर्जनों (जो अधिकतर व्यक्तियों के लिए हानिकारक नहीं होते) के मामूली से संसर्ग से शरीर में उत्पन्न होने वाले इम्यूनोग्लोबुलिन-ई प्रतिपिंडों द्वारा संसार की लगभग 10 प्रतिशत आबादी प्रभावित है तथा यह संभवतया आनुवंशिक है। यह प्रक्रिया 'एटोपी' कहलाती है। 'बहिरस्थ' (एक्सट्रिंसिक) शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि रोगियों में दमा उभारने के लिए पहचाना

चित्र 2: सामान्य श्वसनी (अ), तथा दमा के दौरे के समय श्वसनी की विभिन्न अवस्थाओं (ब, स तथा द) के अनुप्रस्थ काट का रेखाचित्रण, श्लेष्मा झिल्ली (म), जो श्वसनी की आंतरिक सतह का निर्माण करती है, सूज जाती है, श्वसनिका की पेशियां सिकुड़ जाती हैं, जिससे उसका व्यास कम हो जाता है और उसमें स्रावों के भर जाने से सांस लेने में असुविधा होती है।

चित्र 3: दमा के तीव्र दौरे से मरे एक रोगी का सामान्य से अधिक फूला हुआ फेफड़ा। पसलियों के स्थान पर दबे हुए क्षेत्र दिखायी दे रहे हैं।

चित्र 4: *चित्र 3 में दर्शाये फेफड़े का काट। इसमें मध्यम आकार वाली श्वसनिकाओं को गाढ़ी श्लेष्मा (म) से भरा दिखाया गया है।*

चित्र 5: *(अ) और (ब) में एलर्जिक दमा वाले रोगी की दाहिनी श्वसनिका के निचले प्रभागों को प्रकाश-तंतु श्वसनदर्शी से दिखाया गया है। (स) में वही स्थान रोगी को प्रभावित करने वाले एलर्जन के समावेश के दो मिनट बाद की स्थिति को दर्शाता है। (द) वही स्थान 7 मिनट बाद। (अ) और (ब) के मुकाबले इन में श्वास नलिकाओं की सिकुड़न तथा श्लेष्मिका की सूजन साफ दिखायी देती है। (जे. सी. हॉग के सौजन्य से)।*
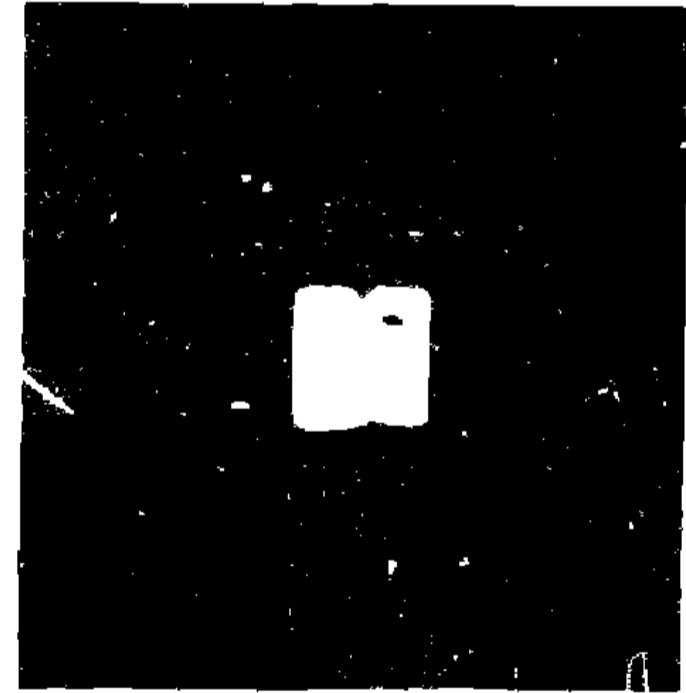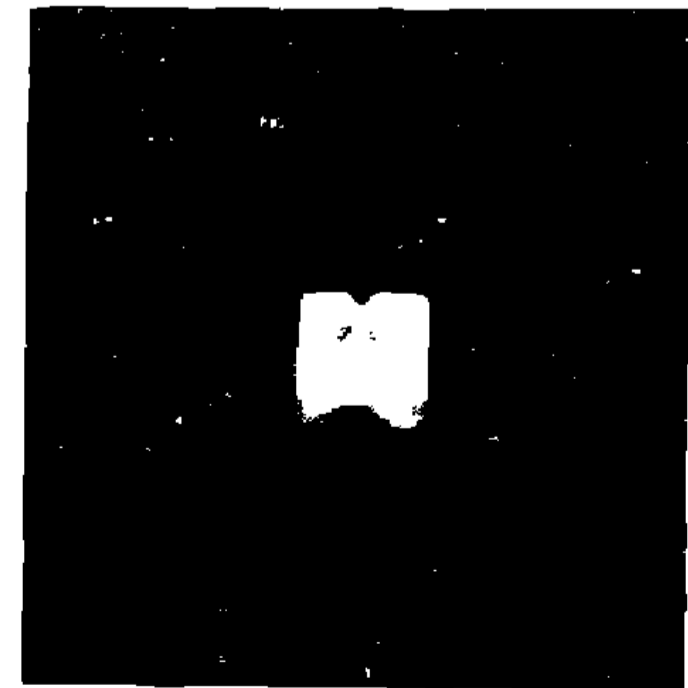
जा सकने वाला एक बाहरी एजेंट जिम्मेदार है। इस किस्म का दमा जीवन के प्रारंभिक वर्षों में शुरू होता है। कई लोगों में यह बाल्य एग्ज़ीमा और नासाशोथ होने के बाद होता है। ऐसे रोगियों में पर्यावरण में मौजूद पदार्थों (एलर्जन) के कारण एलर्जी उत्पन्न हो जाती है, जिसे त्वचा परीक्षणों से दर्शाया जा सकता है। इन रोगियों के परिवार (दादा-दादी, मां-बाप, पुत्र-पुत्री, चचेरे भाई-बहन आदि) में प्रायः दमा का पुराना इतिहास पाया जाता है।

तालिका-1
बहिरस्थ तथा अंतरस्थ (इडियोपैथिक) दमा की तुलना

	बहिरस्थ (एटोपिक)	*अंतरस्थ (इडियोपैथिक)*
आरंभ होने की आयु	अधिकतर बचपन में, 30 वर्ष के बाद कम	अधिकतर 30 वर्ष के बाद
लक्षण	परिवर्तनीय, मौसमी परिवर्तन से संबंधित	अपूर्वानुमाननीय परिवर्तन बहुधा संक्रमण से बढ़ जाने वाला
संबंधित दशा	एलर्जी-जनित जुकाम, एग्जीमा	साइनोसाइटिस, नासिका पालिपता
पारिवारिक इतिहास	गहरा	सामान्य व्यक्तियों से थोड़ा हट कर
त्वचा परीक्षण	सकारात्मक, रोगलक्षण विवरण के अनुसार	अधिकतर नकारात्मक
सीरम इम्यूनोग्लोबुलिन-ई	अधिक	सामान्य
पूर्वानुमान	उत्तम, बच्चों में विसर्ग की ऊंची दर	विसर्ग कम, दीर्घकालीन दमा

ख. बहिरस्थ नान-एटोपिक दमा

इन रोगियों में 'एटोपी' नहीं होती। इसके रोगी पर्यावरण में पाये जाने वाले विशेष प्रकार के पदार्थों जैसे रसायन, धूल आदि के संपर्क में आने से दमाग्रस्त हो जाते हैं। परंतु इनमें प्रभावित होने वाला प्रतिपिंड इम्यूनोग्लोबुलिन-जी है। इन व्यक्तियों को केवल एक ही तरह के एलर्जन से एलर्जी होती है। इस किस्म का दमा किसी भी आयु में हो सकता है। एटोपिक किस्म के रोगियों के मुकाबले में इस किस्म के रोगियों का पारिवारिक इतिहास उतना सामान्य नहीं होता। उपरोक्त दोनों किस्में (क और ख) "एलर्जिक दमा" के नाम से भी जानी जाती हैं।

ग. अंतरस्थ (इडियोपैथिक) दमा

अंतरस्थ दमा रोगियों में यों तो पूरी तरह दमे के लक्षण होते हैं परंतु उनमें न तो किसी ज्ञात एलर्जिक प्रतिक्रिया का और न किसी बाहरी कारण का ही पता लगाया जा सकता है। रोग उत्पन्न करने वाली किसी प्रतिपिंड आधारित प्रतिक्रिया के बारे में भी कोई जानकारी नहीं है। इस किस्म का दमा बहुधा जीवन के पिछले वर्षों (40 वर्ष की आयु के बाद) में शुरू होता है। दमे के दौरों को रोक पाना प्रायः मुश्किल होता है। इस किस्म के दमे का सही कारण ज्ञात नहीं है।

घ. व्यायाम-जनित दमा (इ. आई. ए.)

इस किस्म के रोगियों को व्यायाम या श्रम करने पर दमे का दौरा पड़ जाता है।

2

रोगविज्ञान एवं रोगजनन

दमा रोगियों की श्वास नलिकाओं में वास्तव में क्या परिवर्तन आ जाता है, अथवा दूसरे शब्दों में दमा का रोगविज्ञान क्या है ?

लंबे जीवनकाल के दौरान कितने ही गंभीर दौरों को झेलने के बाद भी दमा रोगी के फेफड़ों और उसकी श्वसन नलिकाओं की बनावट में कोई अंतर नहीं आता। दमे से आयी असामान्यताओं का मुख्य कारण कार्यप्रणाली में आया व्यवधान है, जो दूर हो जाता है। हां, दौरे की अवधि में सामान्य अंगों में कुछ परिवर्तन अवश्य आ जाता है।

दौरे के समय मुख्य परिवर्तन फेफड़े की श्वास नलिकाओं (अंतर्फुफ्फुस श्वास नलिकाओं) में दिखाई देते हैं। इनमें (क) श्वास नलिकाओं की कोमल मांसपेशियों में खिंचाव, (ख) श्लेष्मिका में सूजन तथा (ग) बड़ी मात्रा में गाढ़े स्त्राव और कोशिकाओं के कारण श्वास नलिकाओं में रुकावट सम्मिलित है। इन तीनों परिवर्तनों के कारण वायु के आवागमन में रुकावट पैदा हो जाती है, जिससे सांस लेने में कठिनाई होती है। चित्र 2 में सामान्य श्वसनी तथा दमा के दौरे के समय उसमें आये परिवर्तनों की विभिन्न स्थितियों को दिखाया गया है।

गंभीर दमा के कारण मृत रोगियों की शव परीक्षा से ज्ञात होता है कि उनका वक्ष बेलनाकार है तथा उनके आवश्यकता से अधिक फैले फेफड़े सामान्य व्यक्तियों की भांति वक्ष प्रकोष्ठ खोलने पर भी नहीं सिकुड़ते। साथ ही प्लूरा (फेफड़े की आवरण झिल्ली) का नकारात्मक दबाव समाप्त हो जाता है (चित्र 3)।

फेफड़ों में वायु नलिकाओं का अंतर्व्यास कम हो जाता है तथा श्वसनी की पूरी भित्ति श्लेष्मा में सूजन, रक्तवाहिनियों में रुकावट और श्वसनिका की मांसपेशियों में भारीपन के कारण मोटी दिखाई देती है (चित्र 4 व 5)। शव परीक्षा में पाये गये परिवर्तनों से यह नहीं कहा जा सकता कि दमा के दौरे के समय वास्तव में क्या अंतर आता है क्योंकि अधिकतर रोगियों का दौरा धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और वह बिना किसी रचनात्मक दोष के पूरी तरह स्वस्थ हो जाता है। और फिर रोगियों की बहुत कम प्रतिशत संख्या ही दमा से मरती है। अतः यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि क्या शारीरिक रचना में आये सूक्ष्म दोष दमा के लिए जिम्मेदार हैं। इस समस्या का संभावित उपाय जीवों में

कृत्रिम रूप से पैदा किये गये दमा के लक्षणों का अध्ययन है जिनसे इसमें होने वाले प्रारंभिक परिवर्तनों को परखा जा सकता है।

दमा होने के क्या कारण हैं ?

दमा का वास्तविक कारण ज्ञात नहीं है। ऐसी कोई संभावनां भी नहीं है कि किसी एक वजह से दमा से संबंधित समस्याएं उत्पन्न होती हैं, हालांकि किसी भी दौरे के उत्पन्न होने की कोई एक वजह अवश्य होती है। एक ही रोगी को अलग-अलग समय पर
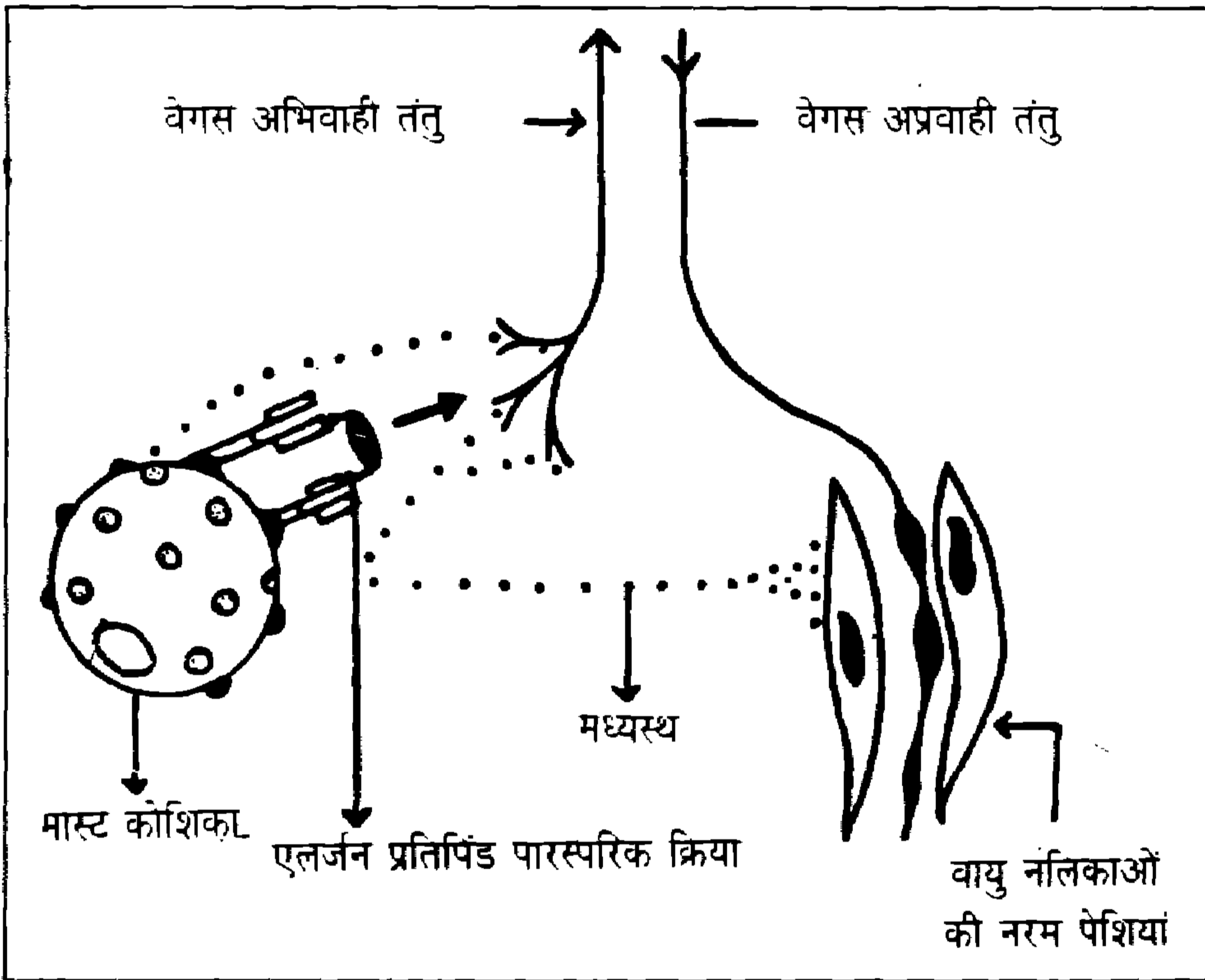
चित्र 6 : एलर्जन प्रतिपिंडों से क्रिया कर उन्हें रासायनिक मध्यस्थों के विसर्जन हेतु प्रेरित करते हैं। ये मध्यस्थ नरम पेशियों तथा वेगस नाड़ी के ग्राहकों पर सीधे ही प्रभाव डालते हैं तथा वायु नलिकाओं की पेशियों में सिकुड़न पैदा कर देते हैं।

अलग-अलग कारण से दमा का दौरा पड़ सकता है। उदाहरणार्थ, मेरा एक रोगी जो टेट्रासाइक्लिन (एक प्रतिजैवी) के प्रति एलर्जिक है और जिसे इस दवा के संपर्क में आते ही दौरा पड़ जाता है, प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा नामक पौधे के पराग कणों के संपर्क में आने पर भी दौरे से ग्रसित हो जाता है।

दमा रोगियों की श्वास नलिकाएं विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती हैं। हाल ही के परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि इस अति संवेदनशीलता का कारण स्वसंचालित तंत्रिका प्रणाली में असंतुलन है। सामान्य व्यक्तियों में श्वास
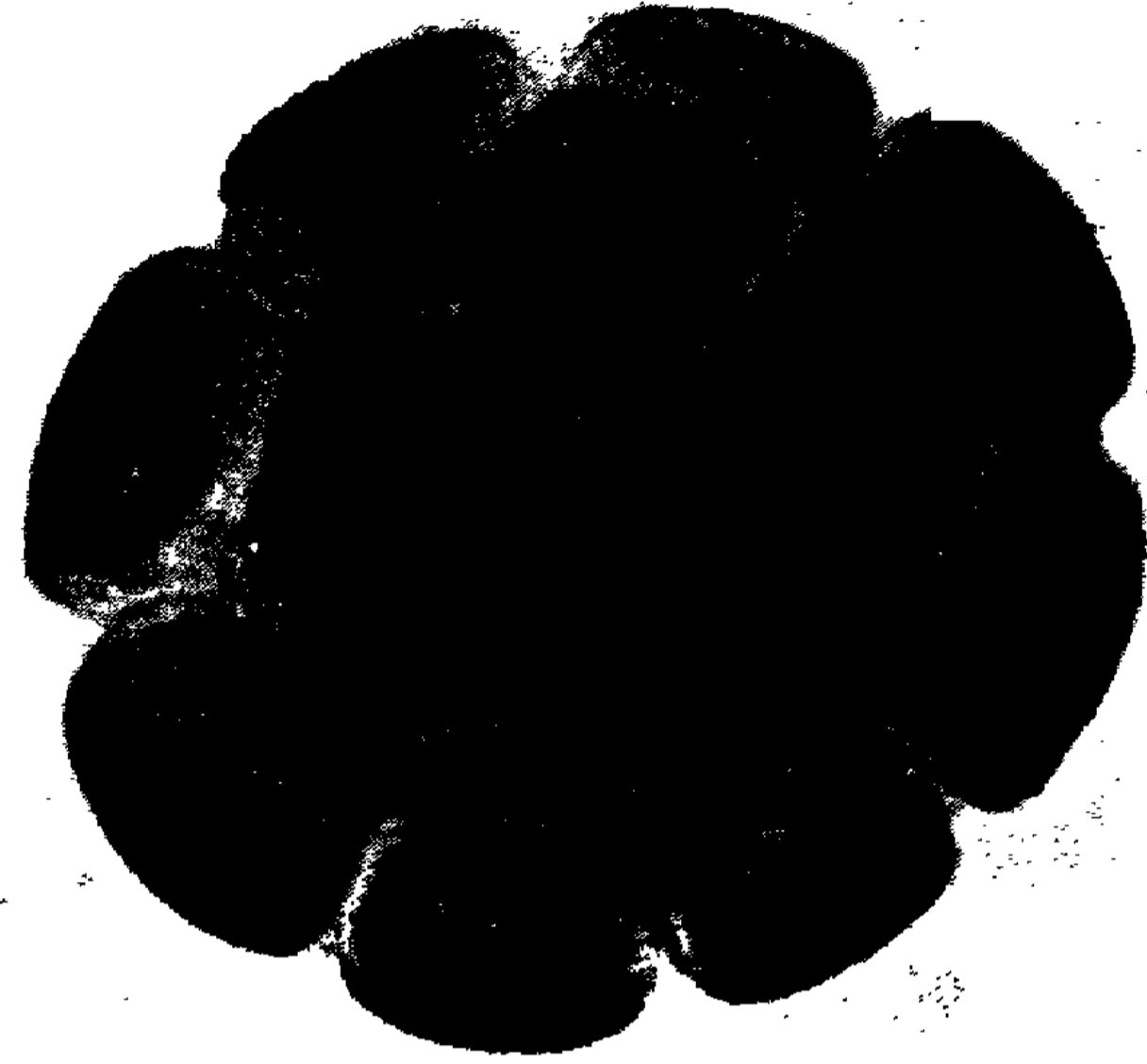
चित्र 7: *वृक्ष के परागकण का इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से लिया गया चित्र*

चित्र 8: *घरेलू धूल की चिंचड़ी (डरमेटो फेग्बाइडस टेरोनाइसिनस) का स्केनिंग इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी द्वारा चित्र*

नलिकाओं का अंतर्व्यास परानुकम्पी (पैरासिम्पेथैटिक-जिनमें नलिकाओं को संकुचित करने का प्रभाव होता है) तथा अनुकम्पी (सिम्पेथैटिक-फैलाने के प्रभाव वाली) तंत्रिका प्रणालियों के संतुलित एवं साम्य व्यवहार द्वारा नियंत्रित होता है। ऐसे कुछ प्रमाण मिले हैं कि दमा रोगियों में परानुकम्पी तंत्रिका प्रणाली अति संवेदनशील होती है, जिसके कारण फैलाव की प्रक्रिया कमजोर पड़ जाती है। एलर्जिक (बहिरस्थ) दमा रोगियों में लक्ष्य कोशिकाओं पर एलर्जन प्रतिपिंड क्रिया के फलस्वरूप हिस्टामिन जैसे रसायनों का निष्कासन होता है जो परानुकम्पी तंत्रिका के सिरों को उद्दीपत करते हैं जिससे श्वसनिका की कोमल पेशियों में तनाव आ जाता है। इन रसायनों का इन पेशियों पर सीधा प्रभाव भी पड़ता है (चित्र 6)। एलर्जी मे, या एलर्जी से न प्रभावित होने वाले, दोनों ही प्रकार के दमा रोगियों पर विभिन्न उद्दीपकों (धुआं, तीव्र गंध, तापक्रम में परिवर्तन, मानसिक तनाव, संक्रमण, हंसना आदि) से दौरे पड़ सकते हैं। ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनमें बाल दमा रोगियों को परीक्षा के दिनों में दमा हो जाता था तथा एक महिला को अपने पति के शरीर की गंध के संपर्क में आते ही दौरा पड़ जाता था।

तालिका 2

उत्तर भारत में दमा पैदा करने वाले सामान्य एलर्जन

पराग	: घास पराग - सेंचुरम, साइनोडोन, आदि वृक्ष पराग - प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा, पुत्रंजिवा आदि काष्ठ पराग - चीनोपोडियम एलबम, आर्टीमीसिया आदि
धूल	: घरेलू धूल, कपास की धूल, पुरानी रद्दी की धूल, घरेलू धूल की चिंचड़ी
ऊपरी त्वचा के कण	: कुत्ता, बिल्ली, भैंस, गाय एवं पक्षियों के पंख
फफूंदी	: आल्टरनेरिया, एसपरजिलस, क्लेडोस्पोरियम, राइनोपस, हेलमिंथोस्पोरियम
रसायन	: प्रतिजैवी, अन्य औषधियां, डिटर्जेंट, कीटाणुनाशक टांका लगाने की धातु, व्यवसायिक रसायन आदि।

दमा के दौरों के लिए जिम्मेदार एलर्जनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वे पदार्थ हैं जिन्हें हम सांस के साथ ग्रहण करते हैं। कभी-कभी भोजन की चीजें, दवाएं, रासायनिक पदार्थ तथा वे चीजें, जो हमारी त्वचा के सपंर्क में आती हैं, दमा को जन्म देते हैं। बहुधा सांस के द्वारा अंदर जाने वाले पदार्थों में घास के पराग कण (चित्र 7), घरेलू धूल में पाई जाने वाली चिंचड़ी (चित्र 8), फफूंदी, जीवों की ऊपरी त्वचा के कण तथा रासायनिक पदार्थ सम्मिलित हैं। उत्तर भारत में दमा के जिम्मेदार प्रतिजनों को तालिका 2 में दर्शाया गया है।

आम धारणा है कि बरसात के मौसम में जब कि तापक्रम और आर्द्रता अधिक होती है दमा रोग बढ़ जाता है। ऐसा ही शुक्ल पक्ष के दिनों में भी होता है। क्या ये धारणाएं वैज्ञानिक आधार पर सही कही जा सकती हैं ?

कुछ रोगी वर्षा के दिनों में दमा के दौरों की मात्रा में वृद्धि अनुभव करते हैं। इसका एक संभावित कारण यह भी हो सकता है कि वे फफूंदी के प्रति संवेदनशील हों जो वर्षा में उत्पन्न होती है। ऊष्ण और नम मौसम इसके विकास में सहयोग देता है, अतः इससे प्रभावित रोगियों में दमा के लक्षण उभर आना स्वाभाविक है। जो रोगी फफूंदी से प्रभावित नहीं होते उन पर इसका कोई असर नहीं होता। वर्षा ऋतु में कई प्रकार के कीट भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनके उत्पाद एलर्जनों का कार्य करते हैं।

इसके विपरीत परीक्षणों के आधार पर कहा गया है कि उच्च तापक्रम और आर्द्रता दमा के दौरों को रोकने में सहयोगी होते हैं। इस परिकल्पना को जांचने के लिए बहिरस्थ दमा रोगियों को, जिन्हें इसकी एलर्जी है, तापक्रम और आर्द्रता की विविध परिस्थितियों में एलर्जन युक्त वायु में सांस लेने और श्रम (व्यायाम) करने को कहा गया। इन रोगियों का प्रारंभिक परीक्षण दमा लक्षणों से रहित अवस्था में सामान्य तापक्रम (28° सेल्सियस) और 50-60 प्रतिशत आर्द्रता (जिसे अनवरत रखा गया) पर किया गया। जिन रोगियों में दमा के लक्षण उभर आये, उन्हें आगे की जांच के लिए अलग कर लिया गया। इन रोगियों के विशेष व्यक्तिगत एलर्जनों तथा श्रम परीक्षणों की अलग-अलग दिनों में पुनः जांच की गयी।

इनमें से प्रत्येक को तापक्रम और आर्द्रता की चार विभिन्न परिस्थितियों में से गुजारा गया :

अ.	उच्च तापमान—उच्च आर्द्रता	(40° सेल्सियस, 100% आर्द्रता)
ब.	उच्च तापमान—निम्न आर्द्रता	(40° सेल्सियस, 0% आर्द्रता)
स.	निम्न तापमान—उच्च आर्द्रता	(0° सेल्सियस, 100% आर्द्रता)
द.	निम्न तापमान—निम्न आर्द्रता	(0° सेल्सियस, 0% आर्द्रता)

इन परीक्षणों में 20 रोगी थे। इनमें से किसी पर भी उच्च तापमान—उच्च आर्द्रता (अ) की स्थिति में दौरा पड़ने या सांस लेने में असुविधा होने का संकेत प्राप्त नहीं हुआ। 20 में से 18 रोगी निम्न तापमान—निम्न आर्द्रता (द) की स्थिति में दौरों के शिकार हुए। 2 -3 रोगियों में (स एवं ब) परिस्थिति में दमा का असर हुआ। इस प्रतिबंधित प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि उच्च तापमान—उच्च आर्द्रता की स्थिति दमा रोगियों के लिए सहायक है, परंतु उन्हें इस दौरान किसी अन्य प्रभाव से बचा रहना चाहिए।

चंद्रमा की कलाओं का दमा रोगियों पर किसी प्रकार के प्रभाव का कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। मुझे कई भारतीयों द्वारा इन धारणाओं में विश्वास रखने व इन्हें बल देने की जानकारी है, परंतु उनके अध्ययन की विधि उचित वैज्ञानिक जांच के आगे ठहर नहीं पायेगी।

दमा रोगियों में से अधिक को नाक संबंधी समस्या रहती है। क्या नाक से अथवा मुंह से सांस लेने का दमा रोग के साथ कोई संबंध है ?

नाक का कार्य केवल सांस की वायु को रास्ता देने का ही नहीं है, बल्कि उसे नम रखने, गर्मी पहुंचाने, धूल कणों से मुक्त रखने व वायु अवरोध को नियंत्रित करने का भी है। कई कारणों से वायु का यह सामान्य प्रवाह बदल जाता है। इनमें नाक का अवरुद्ध हो जाना, पॉलिप, नासिका पट में दोष आना या टेढ़ा हो जाना तथा गांठ की उपस्थिति सम्मिलित है। अधिक मात्रा में नासिका अवरोध के कारण मुंह से सांस लेने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुंह से सांस लेने से वायु का ताप व नमी नियंत्रित नहीं हो पाते तथा गले और श्वास नली में सूखी हवा पहुंचती है जिससे खुश्की, गले का दर्द तथा ग्रसनीशोथ (फेरिनजाइटिस) पैदा हो जाते हैं। साथ ही ठंडी, शुष्क हवा वायुपथ की पेशियों में खिंचाव पैदा कर देती है जो दमा के दौरों में बारूद का काम करती है।

नाक की श्लेष्मिका भी आंतरिक श्वास नलिकाओं की भांति ही उद्दीपकों तथा एलर्जनों से प्रभावित हो रक्तवाहिनियों में अतिस्राव, अवरोधन तथा विस्तरण पैदा कर नासिका रंध्र को संकुचित कर देती है। अधिकतर बहिर्जन्य दमा रोगी ठंड लगने व छींकों से पीड़ित रहते हैं।

आस्ट्रेलिया तथा पाश्चात्य देशों में अधिकतर नाक के पॉलिप, एस्परिन संवेदनशीलता तथा दमा का एक साथ होना पाया गया है। भारतवर्ष में इस तरह का कोई उदाहरण नहीं है। मुझे भारतीयों में यह लक्षण कहीं नहीं मिला जब कि मैंने इसे अंग्रेजों, डचों तथा जर्मनी निवासियों में देखा है। यह ज्ञात नहीं कि क्या इसके कोई जातिगत कारण हैं।

यह भलीभांति निश्चित हो चुका है कि 'ठंड लगने' तथा 'गला खराब होने' से ही कई दमा पीड़ितों में सांस लेने पर सीटी की सी आवाज (व्हीजिंग) आना आरंभ हो जाती है।

दमा रोगियों में नाक और मुंह से सांस लेने के प्रभाव का पता लगाने के लिए हमने 15 व्यक्तियों पर एक मामूली सा प्रयोग किया। इनमें से 5 को श्रम-जनित दमा था, अन्य 5 को दमा तो था परंतु उन्हें श्रम में कोई परेशानी नहीं हुई और शेष 5 सामान्य व स्वस्थ थे। जिस समय प्रयोग आरंभ किया गया, ये सब व्यक्ति दमा के प्रभावों से मुक्त थे तथा किसी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं कर रहे थे। प्रयोग में काम आने वाले कमरे का तापमान और आर्द्रता स्थिर (28° सेल्सियस तथा 70% आर्द्रता) रखे गये। सब व्यक्तियों को श्रम परीक्षण (6 मि. तक दौड़ना) से गुजारा गया–एक बार मुंह बंद करके तथा दूसरी बार नाक बंद करके। प्रयोग के नतीजे तालिका 3 में दिखाये गये हैं।

सामान्य व्यक्तियों तथा उन दमा रोगियों ने जिन पर श्रम का कोई प्रभाव नहीं था, किसी प्रकार की दमा जनित अनुक्रिया* (रिसपान्स) प्रदर्शित नहीं की, यद्यपि मुंह से सांस

* *व्यायाम के प्रति दमाजनित अनुक्रिया को, आधारभूत अथवा व्यायाम पूर्व स्थिति की अपेक्षा, FEVI में 20 प्रतिशत अथवा उससे अधिक की गिरावट के रूप में परिभाषित किया गया है।*

लेने वालों के मामले में दमा जनित अनुक्रिया मापने के पैरामीटर (एफ. ई. वी.) के अंक में कमी आयी। इससे पता चला कि मुंह से सांस लेने वालों के मुकाबले में वायु का प्रतिरोध नाक से सांस लेने वालों के मुकाबले में अधिक होता है।

पहले से ज्ञात श्रम-जनित 5 दमा रोगियों की अनुक्रिया बिल्कुल भिन्न थी। जब उन्हें केवल मुंह से सांस लेने के अभ्यास परीक्षण से गुजारा गया तो उन सब को दमा का गंभीर दौरा पड़ गया। नाक द्वारा सांस लेने पर इन पांचों में से चार में दमा का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। पांचवें की अनुक्रिया उस समय के मुकाबले में कम थी जब उसे सामान्य रूप से सांस लेने का अवसर दिया गया था, अर्थात बिना नाक और मुंह बंद किये।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मुंह से सांस लेने से फेफड़ों के वायुपथों में वायु का प्रतिरोध बढ़ जाता है जो दमा रोगियों के लिए हानिकारक है।

इन निष्कर्षों से अचंभित होने की जरूरत नहीं क्योंकि यदि नासिका मनुष्य के लिए लाभप्रद नहीं होती तो प्रकृति को उसका विकास करने की क्या आवश्यकता थी। हम आजकल इससे संबंधित प्रक्रिया को जानने में लगे हैं। नाक और ग्रसनी को संवदेना रहित करने के पश्चात नाक से सांस लेने (मुंह बंद रखकर) पर किये गये प्रारंभिक परीक्षणों से पता लगा है कि इसमें किसी सामान्य तंत्रिका प्रतिवर्त का सहयोग है। यद्यपि इन प्रयोगों को बार बार दुहराया जा सकता है फिर भी बुद्धिमत्ता इसी में है कि यह मान लिया जाये कि दमा रोग में नाक की भूमिका अभी अच्छी तरह ज्ञात नहीं है।

तालिका 3

श्रम-जनित दमा पर नाक और मुंह से सांस लेने का प्रभाव

व्यक्तियों का प्रकार	*संख्या*	*मुंह से सांस लेने पर दमा जनित अनुक्रिया*			*नाक से सांस लेने पर दमा जनित अनुक्रिया*		
		बढ़ी	*घटी*	*कोई असर नहीं*	*बढ़ी*	*घटी*	*कोई असर नहीं*
स्वस्थ सामान्य व्यक्ति	5	0	0	5	0	0	5
श्रम-जनित सकारात्मक दमा रोगी	5	5	0	0	0	1	4
श्रम-जनित नकारात्मक दमा रोगी	5	0	0	5	0	0	5

उपरोक्त वर्णन से लगता है कि आपने दमा उभारने में श्रम को एक कारण माना है। श्रम-जनित दमा से क्या अभिप्राय है ?

मैं जानता था कि यह प्रश्न अवश्य उठेगा। इसका उत्तर देना वास्तव में मुश्किल है क्योंकि इसे परिभाषित करने में मत-भिन्नता है। काफी वर्षों से यह ज्ञात है कि संवेदनशील रोगियों में शारीरिक श्रम से दमा उभारा जा सकता है। अट्ठारहवीं शताब्दी में सर जान फ्लायेर ने लिखा था "सभी तरह के तीव्र शारीरिक श्रम से दमा रोगियों में सांस तेज हो जाती है।"

आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि दमा रोगियों की एक बड़ी संख्या में उचित श्रम परीक्षण से दमा उभर आता है, परंतु अनुक्रिया जांच की किस्म और उस की मात्रा पर निर्भर करती है। इस अनुक्रिया को उभारने के लिए सबसे उचित श्रम (अभ्यास) 5-6 मिनट तक समतल जमीन पर दौड़ना है। तैरने से यह अनुक्रिया मुश्किल से उभरती है। दमा रोगियों के अलावा अन्य रोगियों में इस प्रकार का श्रम-जनित दमा उत्पन्न होने के कोई प्रमाण नहीं हैं।

कुछ रोगियों में (अधिकतर वयस्क) दमा केवल श्रम से उत्पन्न होता है। परंतु बारीकी से किये गये परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि उनकी वायु नलिकाओं का प्रतिरोध परिवर्तनशील होता है, वे स्वयं चाहे भले ही लक्षणरहित हों।

कम समय के तथा तीव्र श्रम के पहले कुछ मिनटों में सामान्य व्यक्तियों और दमा रोगियों की स्वाभाविक अनुक्रिया वायु नलिकाओं में प्रतिरोध कम होने की होती है (जैसा कि **FEV_1** या **PEFR*** के बढ़ने से पता लगता है)। जहां सामान्य व्यक्तियों में श्रम के दौरान या बाद में वायु पथ में कोई अवरोध (अवरोध में आधिक्य) उत्पन्न नहीं होता, वहीं दमा रोगियों में, श्रम के आधे समय के बाद, वायु अवरोध बढ़ जाता है (**FEV_1** या **PEFR** में कमी) जो श्रम समाप्त होने के बाद तक रहता है और लगभग एक घंटे में धीरे-धीरे सामान्य होता है (चित्र 9 देखिए)।

जिस प्रकार किसी एलर्जन या संक्रमण द्वारा वायु नलिकाओं की कोमल पेशियों में संकुचन पैदा हो जाता है, उसी तरह संभवतया श्रम कुछ रासायनिक मध्यस्थों को शरीर में निष्कासित करता है। जो वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं। आजकल ऐसी औषधियों के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है जो दमे से पीड़ित बच्चों में इस क्रिया को रोककर उन्हें श्रम करने और मुकाबले के खेलों में भाग लेने के योग्य बना सकें।

***FEV_1** : *फोर्सड् एक्सपायरेट्री वाल्यूम इन फर्स्ट सेकेंड (पहले सेकेंड में बलपूर्वक निश्वास मात्रा : लिटर में दर्शाते हुए*

PEFR : *पीक एक्सपायरेट्री फ्लोरेट (शीर्ष निश्वास प्रवाह गति) : प्रति मिनट लिटर में दर्शाते हुए।*
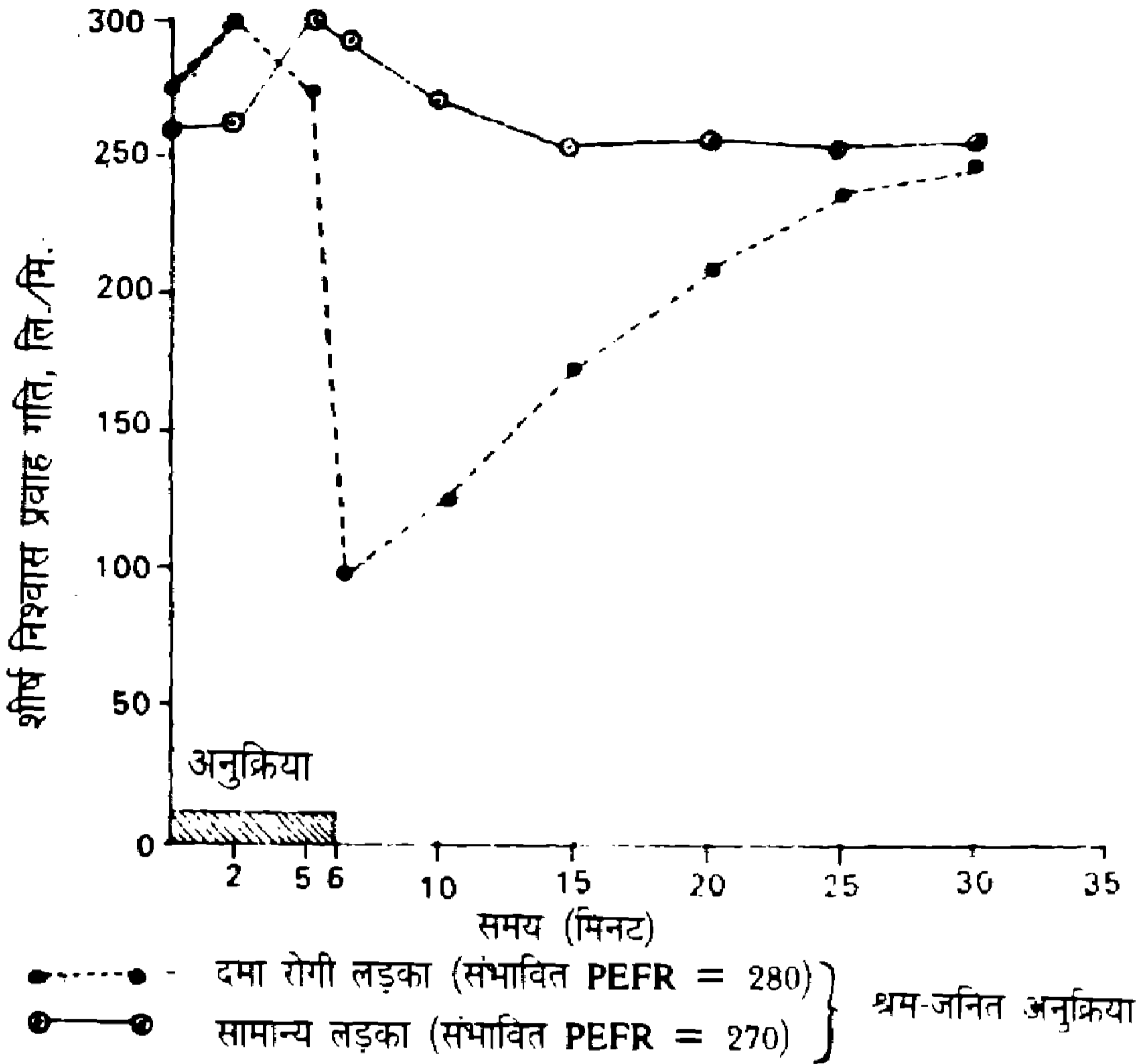
चित्र 9. *एक दमा रोगी लड़के तथा उसी आयु व आकार तथा सामान्य फेफड़े वाले एक स्वस्थ लड़के की श्रम-जनित (समतल भूमि पर भागना) अनुक्रिया। दमा रोगी लड़के (क) में श्रम के अंतिम चरण में सांस लेने में सीटी की सी आवाज आने लगती है तथा उसकी शीर्ष निश्वास प्रवाह गति में महत्वपूर्ण कमी आ जाती है जबकि सामान्य लडके (ख) में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आता।*

ऐसा प्रतीत होता है कि दमा के दौरों का सबसे बड़ा कारण वायुपथ की कोमल पेशियों का संकुचन है। इस प्रक्रिया के बारे में ताजा जानकारी क्या है? क्या दमा रोगियों की इस प्रक्रिया में कोई दोष पैदा हो जाता है?

वायुनलिकाएं वायु को फेफड़ों के वायु प्रकोष्ठों तक पहुंचाने और वापिस लाने का कार्य करती हैं। इनका अंतर्व्यास (नाली के अंदर की चौड़ाई) इस प्रकार नियंत्रित होता है ताकि वायुप्रवाह तथा श्वास प्रक्रिया में प्रतिरोध कम से कम हो। यह तालमेल स्वसंचालित तंत्रिका प्रणाली के सहयोग से स्वयंमेव होता है तथा इसे वायु नलिकाओं की कोमल मांस पेशियां कार्यान्वित करती हैं। दुर्भाग्य से दमा में यह अर्थपूर्ण तालमेल विगड़ जाता है और वायु नलिकाओं की पेशियां सिकुड़कर अंतर्व्यास को कम कर देती हैं (चित्र 10)।

मांसपेशियों की अवस्था (संकुचन या विस्तरण) स्वयं संचारकों या रासायनिक मध्यस्थों, जो तंत्रिका संचारकों के समीप निष्कासित होते हैं, द्वारा निर्धारित होती है। ये कोशिका भित्ति पर स्थित ग्राहकों पर प्रभाव डालते हैं जिससे कोशिका रस में स्वतंत्र
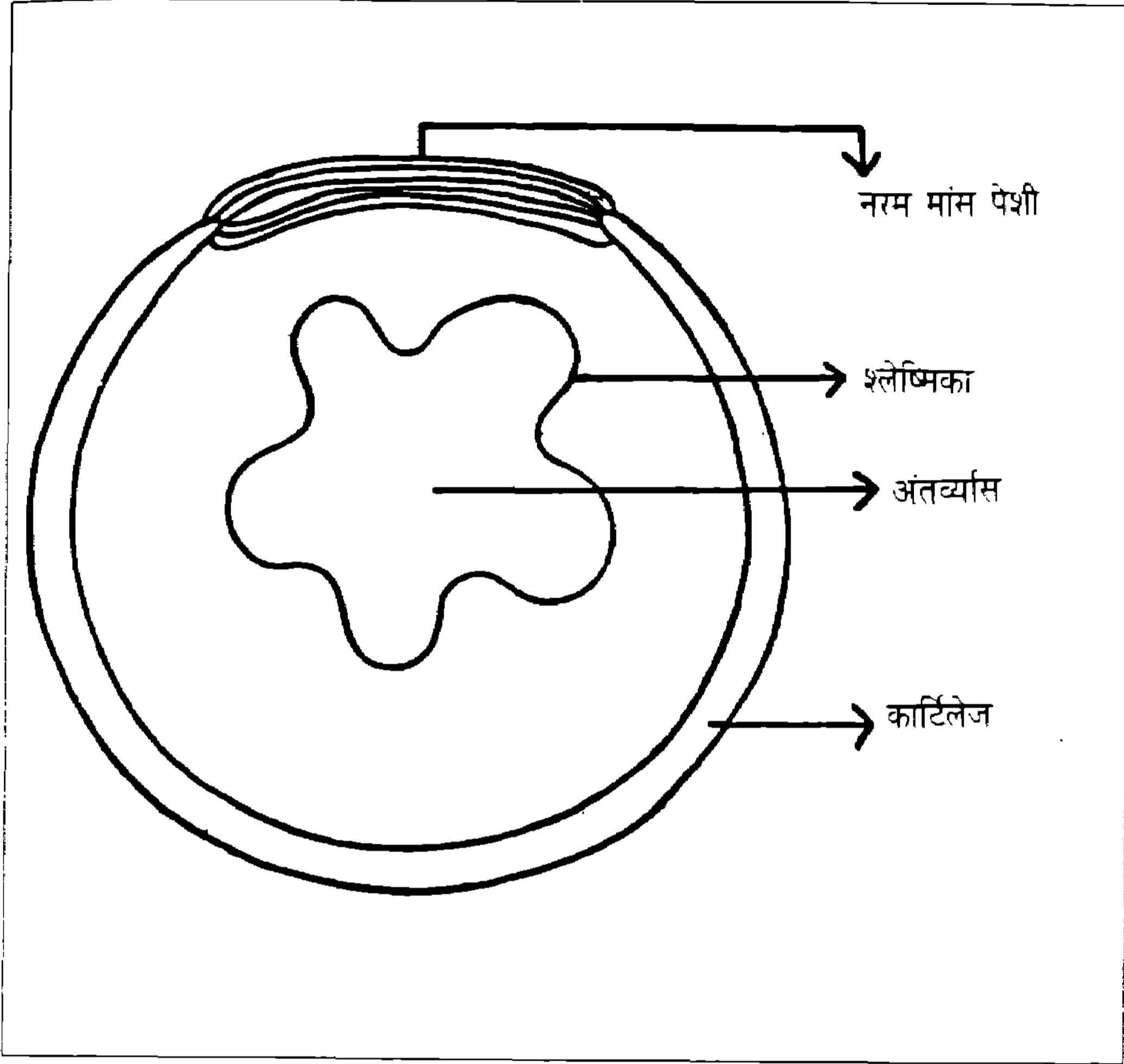
चित्र 10: *श्वसनिका (वायु नलि) का अनुप्रस्थ काट। कोमल पेशियों में आकुंचन से अंतर्व्यास कम हो जाता है*

कैलशियम ऑयन की सांद्रता में परिवर्तन आ जाता है। कैलशियम कई संरचानाओं में एकत्रित रहता है जो इसके ग्राहक प्रकोष्ठ के रूप में कार्य करते हैं। वे कारक जो संकुचन के लिये जिम्मेदार हैं, इस ग्राहक प्रकोष्ठ से कैलशियम मुक्त करते हैं। स्वतंत्र कैलशियम ऑयन मांसपेशियों में स्थित संकुचनशील प्रोटीन सूत्रों को सिकोड़ देते हैं। इसके विपरीत जो कारक फैलाव पैदा करने का गुण रखते हैं वे स्वतंत्र कैलशियम ऑयनों को ग्राहक प्रकोष्ठों में इकट्ठा करने का कार्य करते हैं (चित्र 11 और 12)। इन कार्यों के लिए आवश्यक ऊर्जा विभिन्न मध्यस्थों से प्राप्त होती है।

दमा रोग में वायु नलिकाओं की कोमल पेशियों में खिंचाव प्रायः एक या उससे अधिक मध्यस्थ आवेगों के कारण होता है। इस खिंचाव की स्थिति उस समय बिगड़ जाती है जब संकुचन पैदा करने वाले कारकों के प्रति मांसपेशियां अधिक क्रियाशील हो जाती हैं या फिर फैलाव पैदा करने वाले कारकों के प्रति कम क्रियाशील। क्रियाशीलता में ये असमानताएं पेशी कोशिकाओं पर स्थित ग्राहक कोशिकाओं में परिवर्तन के कारण मानी
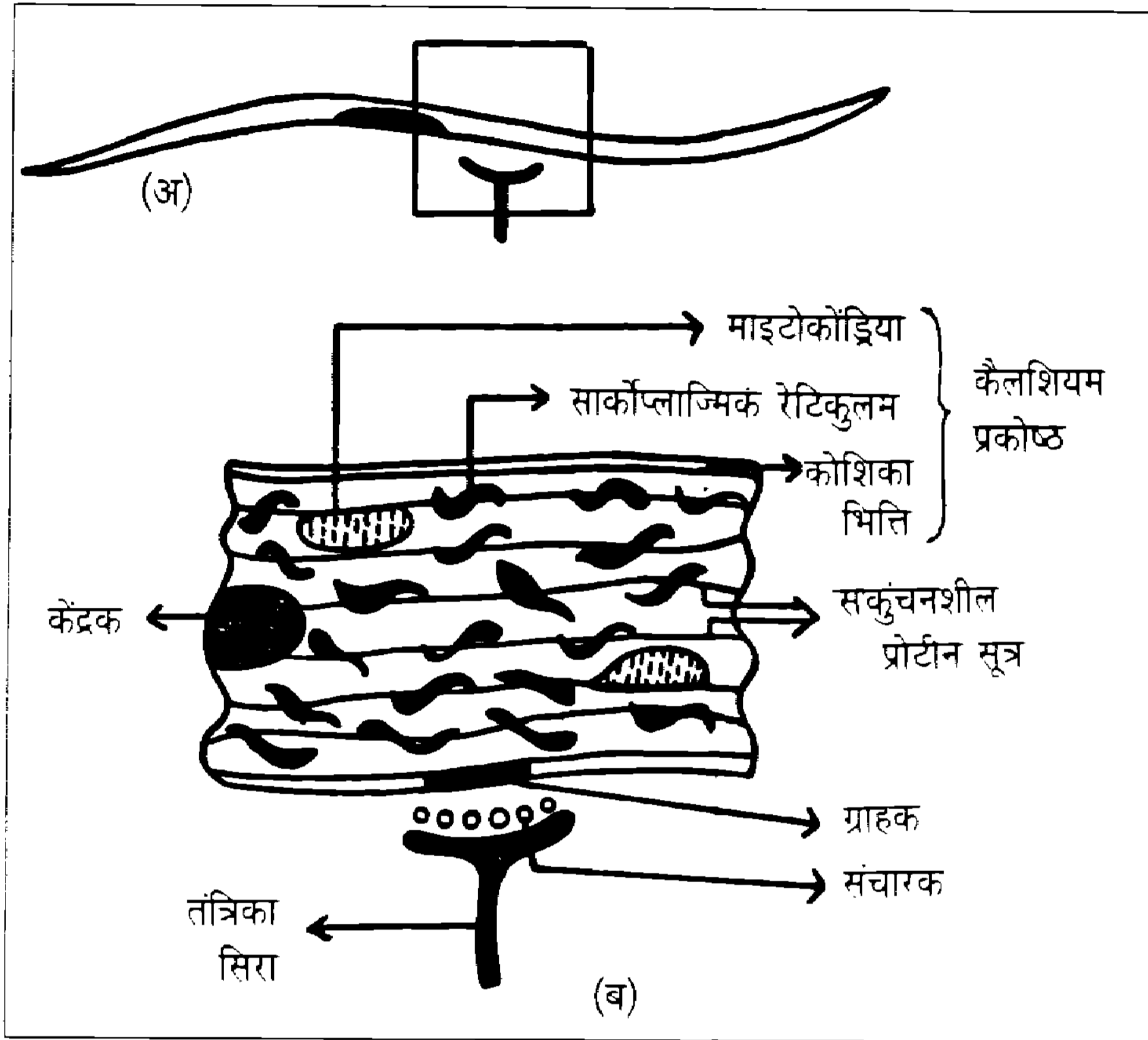
चित्र 11. (अ) कोमल मांसपेशी कोशिका, लंबाई, मि. मी.
(ब) 'अ' में प्रदर्शित कोष्ठिका का वर्धित स्वरूप

जाती हैं (चित्र 11)। परंतु अंतःकोशिकीय कैलशियम आदान-प्रदान में अभी तक किसी भी प्रकार की असमानता नहीं पायी गयी जो दमा का कारण थे (अश्विनी कुमार [10,21,22])।
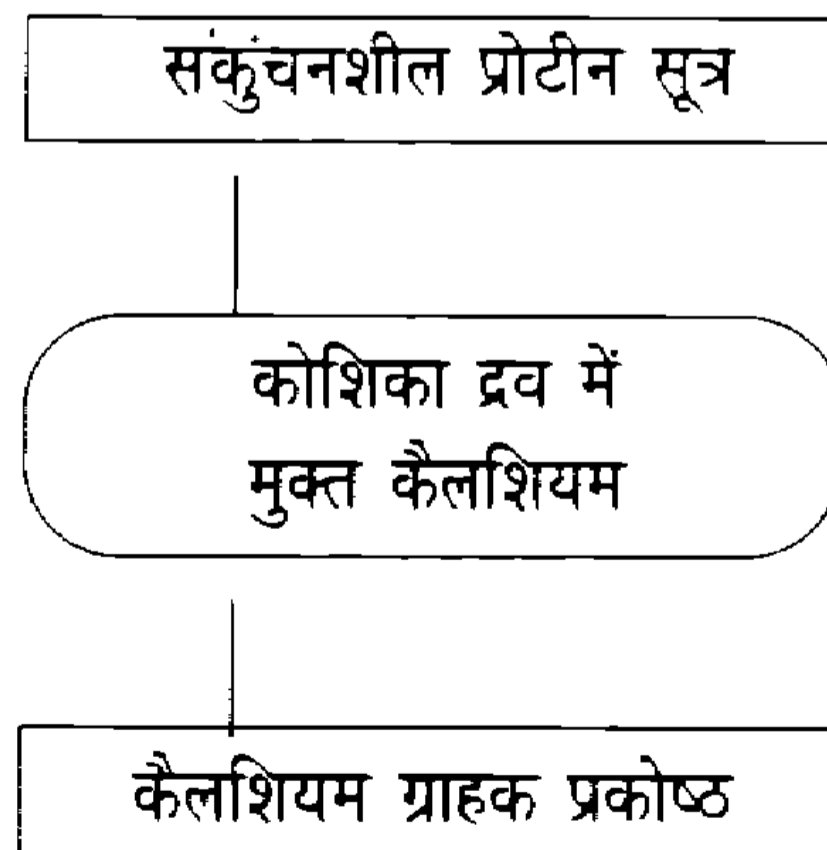
चित्र 12: कोशिका द्रव में मुक्त कैलशियम की मात्रा संकुंचनशील प्रोटीन की कार्यशीलता को नियंत्रित करती है।

3

एलर्जी और दमा

दैनिक जीवन में दमा के दौरों को उभारने में घर, कार्यस्थल और प्रकृति के अनेकों पदार्थों का हाथ है। आप यह कैसे निश्चित करते हैं कि कौन-से संभावित पदार्थ रोगियों में दौरे का कारण हैं ?

सामान्यतया जो पदार्थ हमारी सांस लेने की वायु में मौजूद रहते हैं उन्हें अभिश्वासित पदार्थ कहते हैं। उनमें से कई रोगियों में एलर्जी पैदा करते हैं। वे रोगियों के शरीर में प्रतिपिंड (इम्यूनोग्लोबुलिन) उत्पन्न करते हैं जिनकी रोगी के रक्त में उपस्थिति रेडियो आइसोटैपिक या इम्यून इलैक्ट्रोहोरोसिस नामक आधुनिक परीक्षणों द्वारा ज्ञात की जा सकती है। इनमें से कई बिना एलर्जी उत्पन्न किये (बिना प्रतिपिंडों के निर्माण किये) दमा पैदा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में तथा एलर्जी से उत्पन्न दमा की स्थिति में भी, मैं नियंत्रित परिस्थितियों में संभावित, अभिश्वासित पदार्थ को रोगी पर आजमाकर निश्चित करता हूं कि वह दमा के लिए जिम्मेदार है कि नहीं। यदि वह भोजन से संबंधित वस्तु है तो यह जांच रोगी को केवल वही भोजन खिला कर की जाती है। उसे लगभग 24 घंटे तक परखा जाता है।

जब रोगी लक्षणों से रहित होता है तभी उसका अभिश्वासित पदार्थ प्रोत्तेजना परीक्षण किया जाता है। उसकी आधारी **FEV_1** या **PEFR** को मापा जाता है और यदि यह सामान्य स्तर के अंदर है तो रोगी को एलर्जी उत्पन्न करने वाले पदार्थ को थोड़ी मात्रा में लगभग एक या दो मिनट तक सुंघाते हैं। प्रायः एलर्जनों को द्रव-ऐटोसोल के रूप में तथा रासायनिक व अन्य पदार्थों को धूल, वाष्प या धुएं के रूप में सुंघाते हैं।

औद्योगिक वाष्प या रसायन की स्थिति में रोगी से अपना कार्य करने को कहा जाता है (उदाहरणार्थ, टांका लगाना, कलई करना, पेन्ट, पालिश या वैल्डिंग, आदि)। यह कार्य उससे प्रयोगशाला में बिल्कुल उसी प्रकार से कराया जाता है जैसे वह अपने कार्यस्थल पर करता है। यदि आरंभिक परीक्षण में कोई अनुक्रिया नहीं होती तो पदार्थ की मात्रा और उससे संपर्क की अवधि धीरे-धीरे बढ़ा दी जाती है। आरंभ में रोगी का **FEV_1** या **PEFR** मापा जाता है। उसके बाद प्रति पांच मिनट के अंतराल पर यह जांच जारी रहती

है ताकि इन पैरामीटरों में आयी कमी या उभरते लक्षणों को जांचा जा सके।

कुछ रोगियों में तुरंत ही दमा के लक्षण उभर आते हैं। यह अनुक्रिया प्रायः एलर्जन के कारण होती है और रोगी के रक्त में उससे निर्मित प्रतिपिंड (इम्यूनोग्लोबुलिन-ई) का पता लगाया जा सकता है। चित्र 13 में दमा रोगी में एक प्रतिजैवी (टेट्रासाइक्लिन) से उत्पन्न होने वाली अनुक्रिया को प्रदर्शित किया गया है जिससे उसे एलर्जी है। जब इस
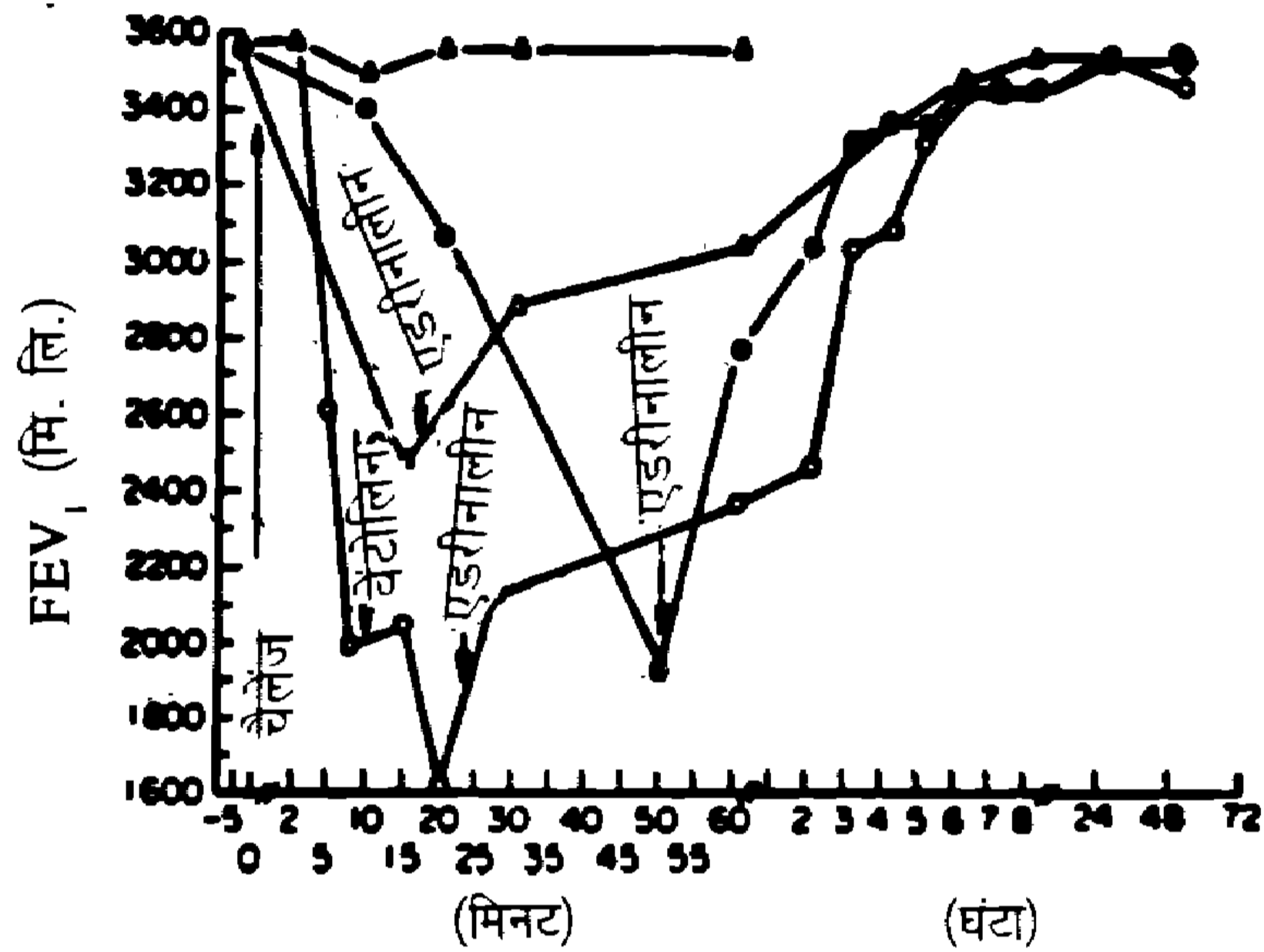
चैलेंज के बाद का अंतराल टेट्रासाइक्लिन के प्रति श्वसनिका की अनुक्रिया। ▲-▲, नमक के पानी के बाद 5 मि. लि.; ▲-▲, त्वचा परीक्षण के बाद 0.5 मि. ग्रा./ मि. लि.; ●-●, सूंघने के बाद 100 मि. ग्रा.; ●-●, शरीर में प्रवेश के बाद 50 मि. ग्रा.

चित्र 13: *टेट्रासाइक्लिन द्वारा एलर्जी से उत्पन्न तुरंत दमा प्रतिक्रिया*

औषधि को रोगी को सुंघाया गया, इसकी सूई लगायी गयी, और इसे खिलाया गया, तो इससे होने वाली अनुक्रिया स्पष्ट दिखायी दी (अर्थात उसके FEV_1 में महत्वपूर्ण गिरावट आयी)।

चित्र 14 में टांका लगाने में काम आने वाले रासायनिक पदार्थ (रांगा) के धुएं के साथ किये गये श्वास परीक्षण को दर्शाया गया है।

चित्र 15 में द्विपक्षीय (तुरंत और कुछ देर बाद उत्पन्न होने वाली) दमा अनुक्रियाएं दिखाई गई हैं। यह परागकण एलर्जन से हुई है। कुछ देर से होने वाली अनुक्रिया कभी-कभी दूसरे किस्म के प्रतिपिंड (इम्यूनोग्लोबुलिन-जी अथवा IgG)12 के कारण होती है। रोगियों में पृथक, देरी से होने वाली तथा कुछ देर से होने वाली, अनुक्रियाएं भी देखने को मिलती हैं।[11, 18]

चित्र 14. *में टांका लगाते हुए उसके धुएं से एक रोगी को होने वाले दमा की पुष्टि करने की अभिश्वसन जांच। रोगी को काम के दौरान इस धुएं से संपर्क होता है। गर्म लोहे को पानी में डुबोने से उठे धुएं से दमा उत्पन्न नहीं हुआ।*
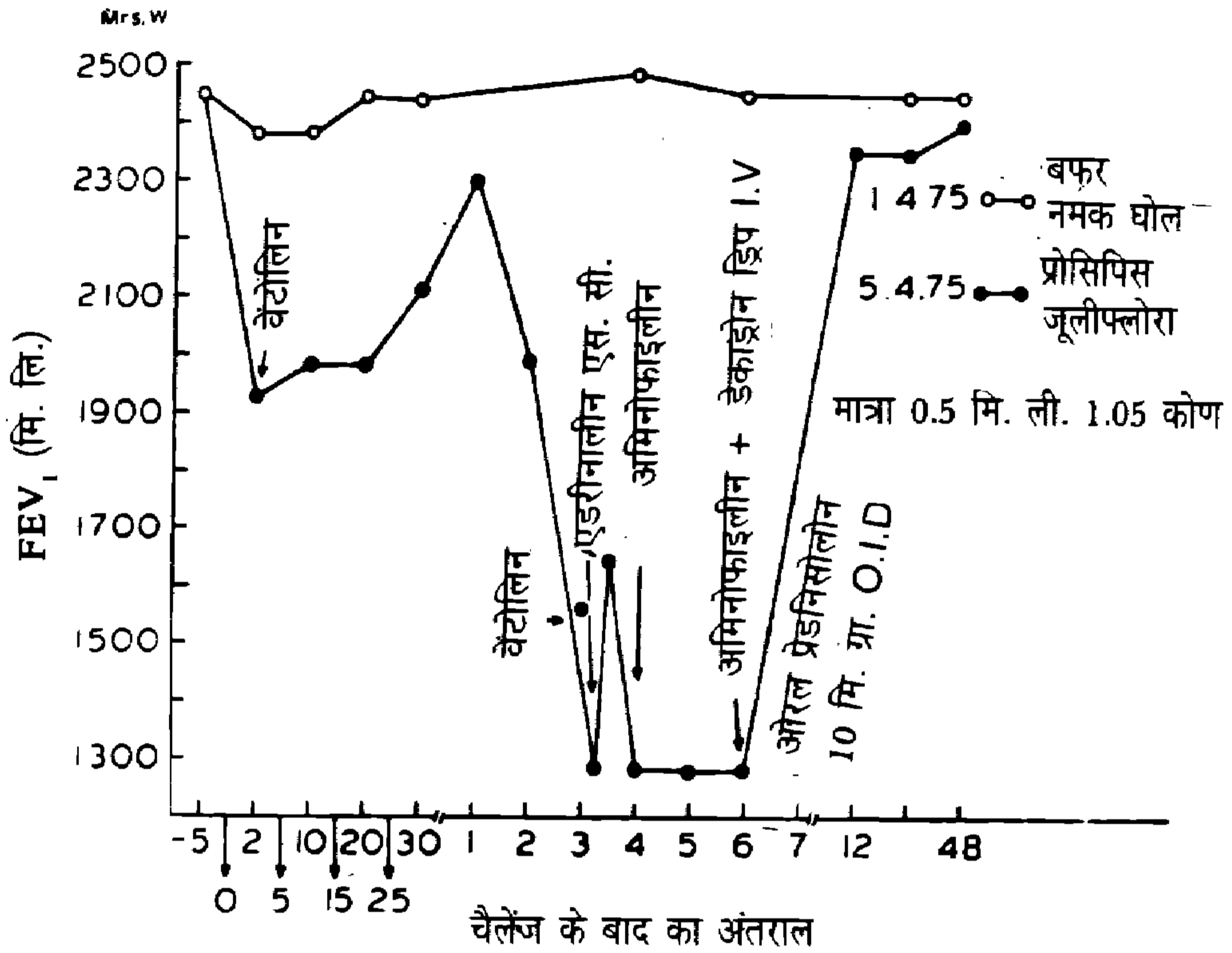
*चित्र 15. प्रोसिपिस जूलीफ्लोरा नामक पौधे के परागकणों के श्वास में जाने से उत्पन्न दोहरी दमा अनुक्रिया। जांच के 3-6 घंटे बाद तथा तुरंत आयी **FEV₁** में गिरावट देखें। इस प्रयोग से सिद्ध होता है कि दमा रोगी किसी एलर्जन से प्रभावित होने के कई घंटे बाद भी दमा से पीड़ित हो सकता है।*

चित्र 16. में एक ऐसे गल्ला व्यापारी की बार-बार होने वाली दमा अनुक्रिया को दर्शाया गया है जो गेहूं की धूल से प्रभावित किया गया है। केवल एक बार के संपर्क के बाद रोगी दिन के एक विशेष समय पर कई दिनों तक दमा से पीड़ित होता रहा। सबसे पहले इस प्रकार की अनुक्रिया ब्रिटिश व ऑस्ट्रेलियन कार्यकर्ताओं ने देखी। श्वसन तथा अन्य उत्तेजक प्रयोगों द्वारा (अ) कारक की पहचान करने, (ब) अनुक्रिया की किस्म का पता लगाने, (स) संबंधित प्रक्रिया को समझने, तथा (द) दौरों को रोकने के लिए दवा की किस्म ढूंढने में बड़ी मदद मिलती है। कुछ औषधियों के पूर्व सेवन से इन अनुक्रियाओं को रोका जा सकता है।

दमा के निदान और उसके उपचार में कौन-कौन सी जांच सहायक एवं आवश्यक है ?

अ. इनमें सबसे महत्वपूर्ण जांच रोगी की रोग लक्षण हेतु पूछताछ तथा निरीक्षण है जिससे श्वास फूलने व आवाज आने के कारणों को सीमित करने, संबंधित व्याधियों
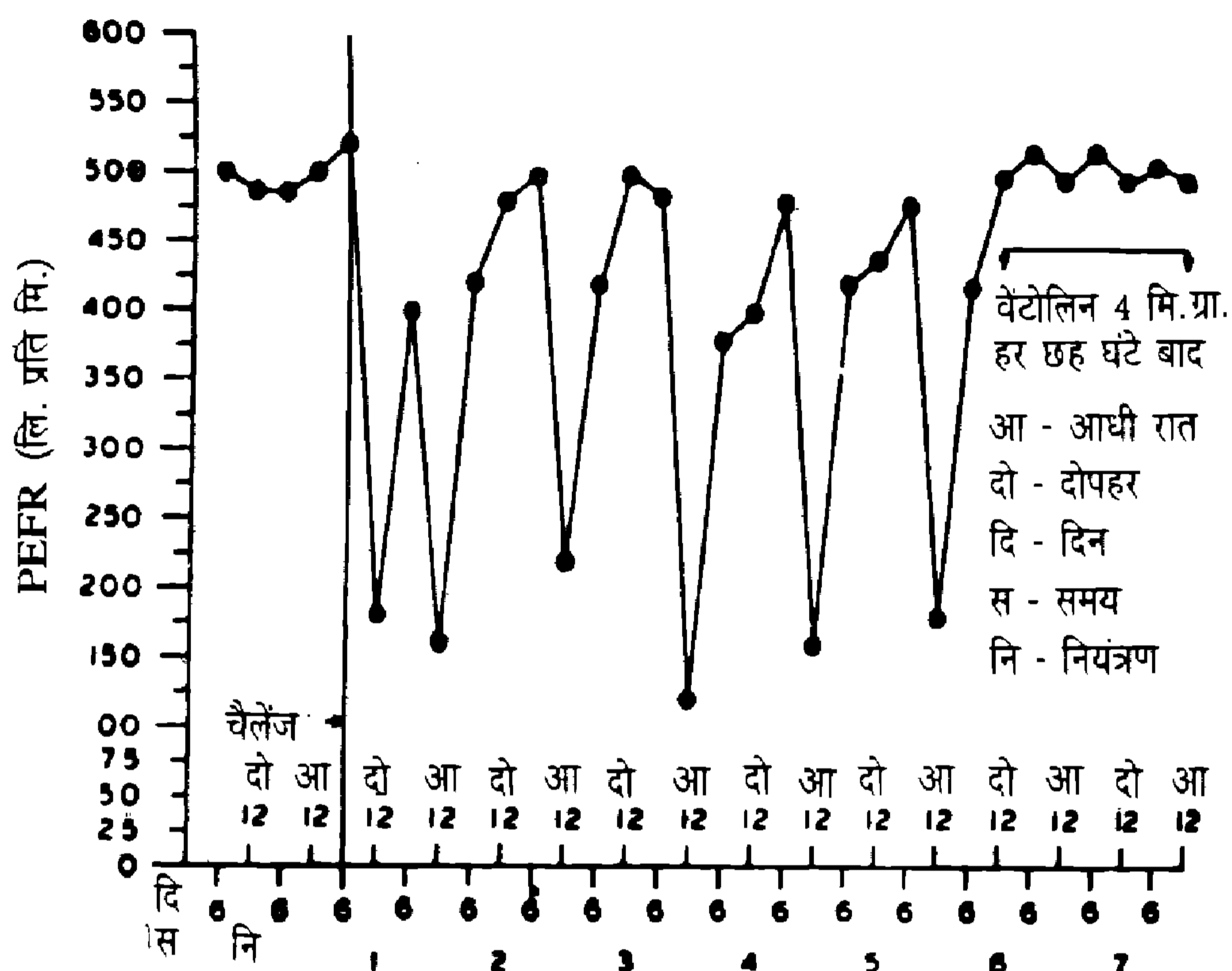
चित्र 16. गेहूं की धूल के एक बार के संपर्क से प्रतिदिन एक ही समय बार-बार होने वाले दमा के दौरे। इस प्रकार की अनुक्रिया की कार्यविधि अभी ज्ञात नहीं है।

को ज्ञात करने तथा दमा उत्पन्न करने वाले कारकों का पता लगाने में बड़ी मदद मिलती है।

ब. फेफड़े के कार्य की जानकारी हासिल करना दूसरी आवश्यक जांच है।

सामान्य रोग लक्षण जांच हेतु, शीर्ष वायु प्रवाह मापक द्वारा (चित्र 17), जो एक साधारण, आसानी से प्रयोग किये जाने वाला यंत्र है, शीर्ष निश्वास (सांस बाहर निकालना) वायु प्रवाह मापना पर्याप्त है। इसे बार-बार मापना आवश्यक है ताकि वायु प्रवाह में अवरोध, जो दमा की एक विशेषता है, का पता लगाया जा सके। दमा रोगियों में चरम वायुगति में परिवर्तन हर दिन और उन दिनों में भी होता है जब उनमें दमा के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते।

स. दमा उत्पन्न करने वाली एलर्जी की जांच की अलग से चर्चा की गयी है (प्रतिरक्षीकरण के अंतर्गत देखें)।

चित्र [illegible]. चरम वायु-प्रवाह-मापक, वायुपथ की कार्यक्षमता को मापने का एक सरल व लाभदायक यंत्र है। रोगी एक गहरी सांस अंदर खींचता है और फिर उसे यंत्र में फूंक कर अधिक से अधिक दबाव के साथ बाहर निकालता है। यंत्र की सूई अधिकतम वायुप्रवाह को अंकित करता है। माप लिटर/मिनट द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।
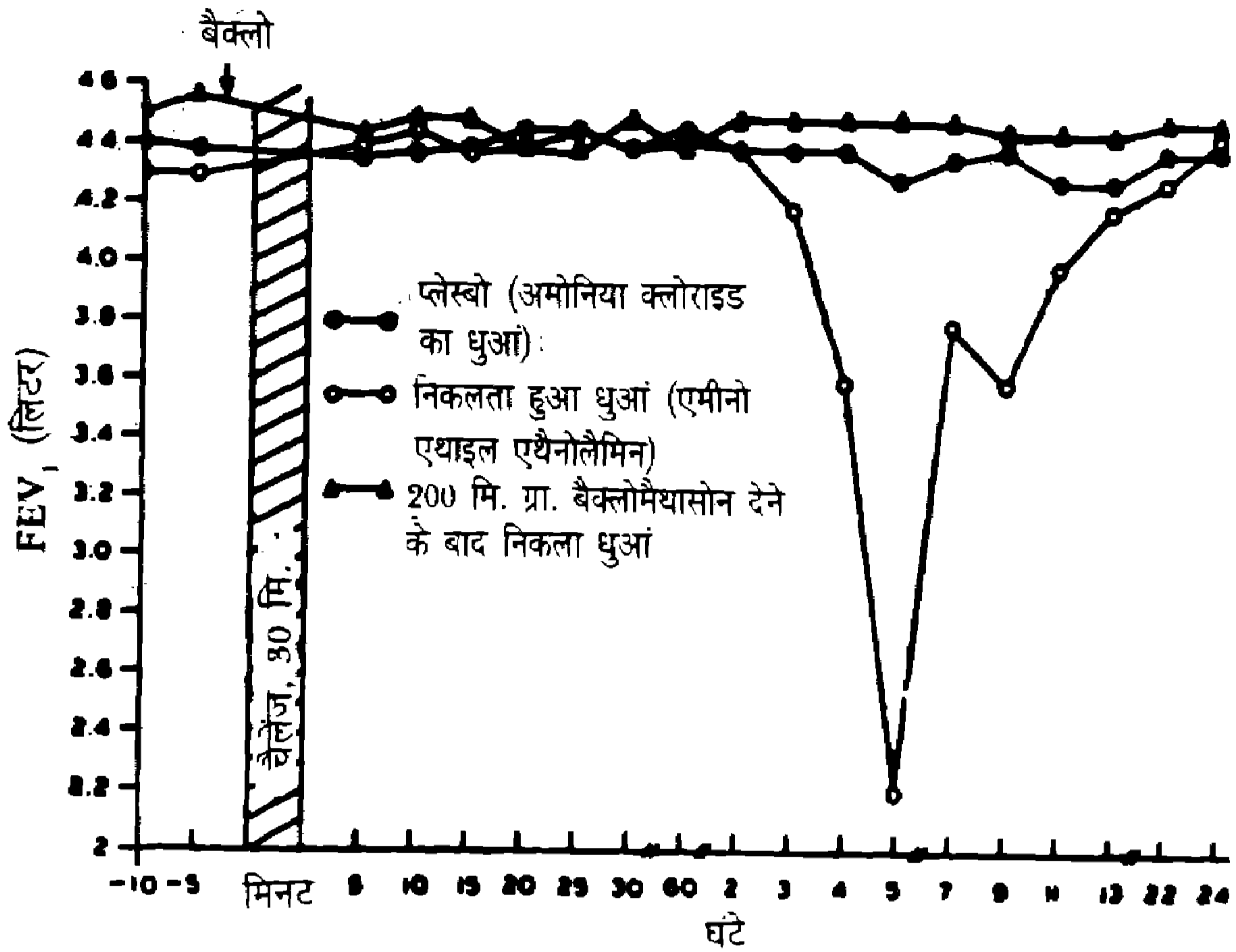
चित्र-18. टांके के धुएं से देर से होने वाला दमा, पुरुष-42, नान-एटोपिक

में सबसे पहले उसकी खुराक में दूध जोड़ा जाये और एक सप्ताह तक रोगी पर नजर रखी जाये। यदि उसे इस अवधि में दमा नहीं होता तो इससे स्पष्ट हो जायेगा कि दूध कोई नुकसान नहीं पहुंचाता। इसके बाद गेहूं, चावल आदि की एक-एक करके जांच की जाये। यदि इनमें से कोई चीज दमा पैदा करती है तो उसका सेवन बंद कर दें। वही दमा के लिए दोषी हो सकती है। बाद में केवल उसी पदार्थ को तब देना चाहिए जब वह लक्षणों से रहित हो। इस जांच का अच्छा तरीका यह है कि रोगी से उस पदार्थ की कुछ ग्राम मात्रा प्रातः खाने को कहा जाये (पानी के अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ साथ न हो) और फिर सारे दिन भूखा रखा जाये। यदि कोई खाद्य पदार्थ दमा का कारण है तो वह दौरा पैदा कर देगा और यदि वह नहीं है तो कोई लक्षण नहीं उभरेगा।

उपरोक्त विधि उलझनभरी है तथा अधिकतर रोगी इसे नहीं कर पाते। उन्हें तो रोग को ठीक करने के लिए रामबाण या जादुई ताबीज चाहिए; भले ही ये वस्तुएं होती ही न हों। बहुत से रोगियों में आवश्यक अनुशासन या मनोबल की कमी होती है जिससे वे इस सख्त परंतु तर्कसंगत विधि को अपना नहीं पाते। दूसरे, विशेषज्ञों को भी इस जांच का कोई मेहनताना नहीं मिलता। अतः यह जांच न रोगियों को और न चिकित्सकों को पसंद आती है। फिर भी जानकारी होने पर भोजन की उस वस्तु को हमेशा के लिए त्याग देना ही एक मात्र उपाय है।
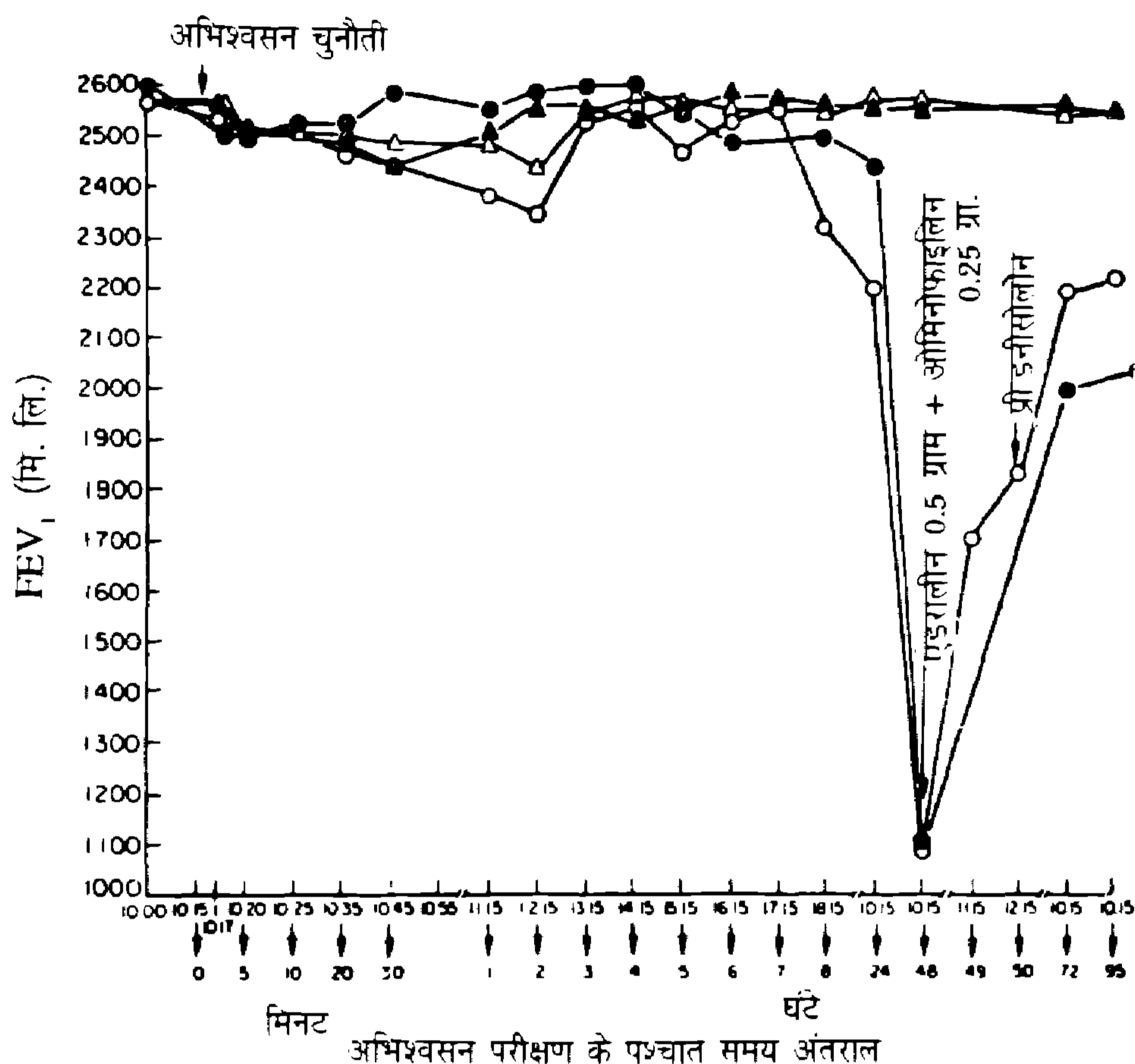
चित्र 19. *एक कीट एलर्जन से उत्पन्न देरी से होने वाला दमा*

भारत में भोजन के बारे में अनेकों अंधविश्वास हैं। हम लोग वर्जित भोजन के उपयोग को मानव के दुखों का कारण मानते हैं। यद्यपि यह बात सत्य है कि अधिक भोजन खाना उचित नहीं है, फिर भी देशवासियों का भोजन के बारे में अंधविश्वास स्वीकार करना कठिन है। इन अंधविश्वासों में से अनेक प्राचीनकाल की चिकित्सा प्रणालियों की देन हैं। इनके अनुसार भोजन की सभी वस्तुओं को वात, पित्त और कफ उत्पन्न करने वाले वर्गों में बांटा गया है और विशेष रोगियों को इनसे बचने की सलाह दी गयी है। मेरे भारतीय मरीजों (चाहे वे हिंदू, मुसलमान या ईसाई हों) में से अधिकतर मुझसे भोजन में किस-किस वस्तु से परहेज किया जाये के बारे में पूछते हैं। यदि उन्हें भोजन में से कुछ वस्तुएं परहेज के लिए न बतायी जायें तो उन्हें इलाज पर विश्वास नहीं होता। शायद ही कोई मरीज ऐसा हो जो ये पूछे कि भोजन में कौन-कौन सी वस्तुएं ली जायें।

आयुर्वेदिक ग्रंथों से हमें परहेज के महत्व के बारे में पता चलता है। उदाहरणार्थ, "अष्टांग- हृदय" में लिखा है "दूध, घी, मट्ठा, दही, तेल, गरिष्ठ व वायुत्पादक भोजन जैसे दाल, सीताफल, टमाटर तथा नींबू से दमा रोगियों को परहेज करना चाहिए।" "बरसात

के मौसम में मट्ठा" दमा रोगियों के लिए बड़ा अहितकर माना जाता है और उन्हें बकरी के दूध की सलाह दी जाती है। ऐसी धारणा है कि केला कफ उत्पन्न करने वाला है तथा इसे खाने के बाद पानी नहीं पीना चाहिए। उत्तर भारत में चावल वायु पैदा करने वाला माना जाता है जब कि दक्षिण में गेहूं को दोषपूर्ण मानते हैं। इन अंधविश्वासों का आधार केवल विगत से हमारा चिपके रहना है जबकि विज्ञान इनमें कोई सत्यता नहीं पाता। दमा का रोगी अच्छी हालत में वह सब कुछ खा सकता है जिससे उसे कभी कोई परेशानी नहीं हुई। उसे उन पदार्थों से अवश्य बचना चाहिए जिन्हें वह हानिकारक समझता है। एक का पथ्य दूसरे का कुपथ्य हो सकता है, अतः इसमें चुनाव की आवश्यकता है। कोई भी चिकित्सक किसी भी भोजन के लेने या न लेने के बारे में रोगी को नहीं कह सकता। जब तब कि वह यह सिद्ध न करे कि विशेष खाद्य पदार्थ उसके दमे का कारण है।

अष्टांग हृदय में दिये गये निर्देश आज भी सामान्य तौर से खरे उतरते हैं। उदाहरण के रूप में (1) नियमित भोजन नियत समय पर, धीरे-धीरे, शांत होकर खाना चाहिए (दमा रोगी उत्तेजना, उद्वेग, तथा जल्दबाजी से बचें), (2) ठूंसकर पेटभर कर न खायें तथा (3) रात्रि का भोजन हल्का होना चाहिए और भोजन के 2-3 घंटे बाद सोना चाहिए, आदि। यदि रात्रि के भोजन के बिना रहा जा सके तो उत्तम है। रोगी को बैठी स्थिति में गहरे सांस लेने का अभ्यास करने की सलाह दी जाती है। ये निश्चित रूप से बड़े काम के परामर्श हैं। मदिरा, बीयर तथा गैस बनाने वाले पदार्थों से परहेज करना लाभदायक है। थोड़ी मात्रा में शराब या ब्रांडी का सेवन भले ही हानिकारक न हो, फिर भी दमा रोगियों को मद्यपान और धूम्रपान से बचना चाहिए।

अंत में हमें यह भलीभांति समझ लेना चाहिए कि दमा रोगी बच्चों को उनके प्रिय भोजन की वस्तुओं से, अधकचरे चिकित्सकों के कहने पर वंचित नहीं रखा जाये। जब दमा रोगी बच्चा दौरे की स्थिति में हो तो उसे पूरी तरह नियंत्रित व संतुलित भोजन देना चाहिए तथा ठंडे व बर्फ में रखे पदार्थों से परहेज कराना चाहिए। लेकिन जब वह दमा के लक्षणों से रहित हो तो उसे हर तरह का भोजन दिया जा सकता है । केवल उन्हीं खाद्य पदार्थों से परहेज किया जाना चाहिए जिनके बारे में वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो कि वे दमा उभार सकते हैं।

●

4

दमा का उपचार

आजकल दमा को नियंत्रित करने के लिए कौन सी औषधियों का प्रयोग किया जाता है ? उपचार का आदर्श नियोजन क्या है?

दमा के नियंत्रण में काम आने वाली औषधियों को तीन मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है।

अ. औषधियां जो कोमल श्वसनिका पेशियों को विश्रांति देती हैं;

ब. औषधियां जो वायु नलिकाओं को अवरुद्ध करने वाले स्रावों को निकालती हैं;

स. औषधियां जो दमा के दौरों को रोकती हैं।

द. इनके अलावा वे औषधियां जो दमा के दौरों को तो रोकती हैं परंतु जिनकी कार्यविधि ज्ञात नहीं है। संभवतया वे कई प्रकार से कार्य करती हैं।

अ. वर्ग में आने वाली औषधियां हैं–(1) अनुकम्पी तंत्रिका प्रणाली को उद्वेलित करने वाली जैसे, एफीड्रीन, एपीनेफ्रीन, आदि, (2) विशेष एन्जाइम को अवरुद्ध कर कोमल पेशियों को विश्रांति देने वाली जैसे, थियोफाइलिन (अमिनोफाइलिन, डेरिफाइलिन, आदि,) तथा, (3) वे जो परानुकम्पी तंत्रिका प्रणाली की क्रिया में रुकावट पैदा कर पेशियों को शांत करती हैं जैसे, एट्रोपीन, एट्रोवेंट, इपेट्रोपियम ब्रोमाइड, आदि।

ब. वर्ग में वे औषधियां हैं जो कफोत्तेजक तथा कफ निवारक हैं, यानी जो कफ को पतला कर उसे बाहर निकालने में मदद करती हैं जैसे पानी, पोटाशियम आयोडाइड तथा ग्लिसराइल गाइकोलेट।

स. वर्ग की औषधियों में हैं–डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट (इन्टाल या इनफिराल)। ये रासायनिक मध्यस्थों के निष्कासन को रोक कर दमा के दौरों से बचाती हैं।

द. वर्ग के अंतर्गत आने वाली दवाओं के समूह को कोर्टिकॉस्टे-रायड कहते हैं। इन दवाओं के अत्यंत प्रभावशाली होने के बारे में कोई संदेह नहीं है।

पहले 24 घंटों में अधिकतर दवा की बड़ी खुराक की जरूरत पड़ती है। अक्सर इनके कई बुरे प्रभाव भी होते हैं। जो इनके लगातार लेते रहने पर हो जाते हैं, जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, पौष्टिक अल्सर, बच्चों में विकास का रुकना, हड्डियों के नुकसान व निराशा आदि।

जहां तक आदर्श नियोजन का प्रश्न है मैं यह कहना चाहूंगा कि सभी दमा रोगियों पर लागू होने वाला कोई अकेला आदर्श नियोजन नहीं है क्योंकि अलग-अलग व्यक्तियों में दमा उत्पन्न करने वाले कारण अलग-अलग होते हैं। फिर भी निम्नलिखित नियोजन के बारे में विशेषज्ञों की सहमति है। सभी रोगियों को यह स्पष्ट होना चाहिए कि उन्हें औषधि कब लेनी है और ठीक रहने की अवधि में उसे बंद रखना है।

1. हल्के दमा उपचार का नियोजन

(हल्के दमा से अभिप्राय है वह दौरा, जो रोगी के नित्यप्रति के कार्यक्रम को अव्यवस्थित नहीं करता)।

(अ) 12-24 मि. ग्रा. एफीड्रीन तथा 100 मि. ग्रा. थियोफाइलिन का मुंह से, या 2 मि. ग्रा. सालबुटामॉल (वेंटोलिन) तथा 100 मि. ग्रा. थियोफाइलिन का मुंह से एक बार या आवश्यकता होने पर 6 घंटे के अंतराल पर सेवन करना;

(ब) किसी दाबयुक्त एरोसोल बोतल से आवश्यकतानुसार हर 6 घंटे बाद 100-200 माइक्रोग्राम सालबुटामॉल को सूंघना, तथा

(स) डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट (इन्टाल) के एक कैपसूल (20 मि. ग्रा.) की मात्रा को एक विशेष यंत्र (रोटोहेलर) द्वारा दिन में चार बार सूंघना। इसे कम से कम 8 सप्ताह तक प्रयोग करें और यदि साथ में अन्य दवाएं नहीं चल रही हैं या फिर बहुत कम मात्रा में हैं, तो इसका उपयोग लगातार किया जाये। यदि इसे लेने के बावजूद भी दौरे न रुकें तो इसे 8 सप्ताह बाद बंद कर दिया जाये। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुछ रोगी इससे लाभांवित होते हैं और कुछ नहीं तथा इसका पता लगाने की, इस औषधि का कुछ सप्ताह तक सेवन करने के अतिरिक्त, कोई विधि नहीं है। लंबी अवधि तक लेने पर भी इस दवा से कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि कुछ रोगियों में इससे दमा में वृद्धि, त्वचा पर चकत्ते तथा कफ में बढ़ोतरी हो जाती है।

2. सामान्य दमा उपचार का नियोजन

(अ) मुंह से एफीड्रीन या सालबुटामॉल देना, यदि उससे लाभ न हो तो;

(ब) 1.1000 घोल के 0.5 मि. लि. एडरीनालीन का त्वचा में टीका लगाना तथा

बाद में अमिनोफाइलिन के 0.25 जी को 20 मि. लि. ग्लूकोज के घोल में मिलाकर नस में टीका लगाना;

(स) कफ निवारक के रूप में पोटाशियम आयोडाइड के पांच दाने दूध में मिलाकर दिन में तीन बार देना (जिन रोगियों को आयोडाइड से संवेदनशीलता हो उन्हें यह न दिया जाये);

(द) जिन रोगियों में दौरों के कारण प्रतिदिन टीके की आवश्यकता होती है उन्हें थोड़ी अवधि के लिए, उचित देखभाल में, कॉर्टिकॉस्टेरायड का गहन कोर्स दिया जाये (ध्यान रहे कि इनका स्वयं उपयोग कभी न करें)। प्रारंभ में रोगी को 60 मि. ग्रा. प्रेडनिसोलोन अकेली खुराक के रूप में मुंह से सुबह खिलाया जाये। इस पूरी अवधि में सालबुटामॉल और थियोफाइलिन उपरोक्त लिखी विधि से दिन में तीन बार दी जाये। 60 मि. ग्रा. प्रेडनिसोलोन की दैनिक प्रातकालीन खुराक तब तक चलाई जाये जब तक दमा के लक्षण नियंत्रण में न आ जायें। लक्षणों के दबने पर प्रतिदिन 5 मि. ग्रा. प्रेडनिसोलोन की मात्रा कम करते रहें जब तक कि खुराक 10 मि. ग्रा. तक पहुंच जाये। यदि इस खुराक पर 4-5 दिन तक दमे का प्रहार न हो तो दवा एक दिन छोड़ कर दी जाये। एक दिन छोड़ कर 10 मि. ग्रा. प्रेडनिसोलोन की खुराक तथा सालबुटामॉल और थियोफाइलिन की दिन में तीन बार खुराक देने पर भी रोगी में कोई लक्षण दिखाई न दें, तो प्रेडनिसोलोन को बिल्कुल बंद कर दिया जाये और रोगी को उन दोनों दवाइयों पर ही रखा जाये। बहुत कम रोगियों को लंबे समय तक बीच-बीच में स्टिरायड चिकित्सा की आवश्यकता होती है। ऐसे मामलों में समय-समय पर रोगी के मूत्र-शर्करा, सीरम कैलशियम, छाती का एक्स-रे, रक्तचाप, आदि की जांच की जाये। उपचार बंद होने या खुराक कम करने पर यदि दमा फिर शुरू हो जाये तो स्टिरायड की अधिक मात्रा पुनः आरंभ करनी होगी। रोगी के किसी प्रकार के संक्रमण से ग्रसित होने, या शल्य चिकित्सा की आवश्यकता आ पड़ने पर, यदि वह स्टिरायड चिकित्सा पर है, तो इस औषधि की मात्रा दुगनी करनी होगी। उन सभी रोगियों के, जो स्टिरायड चिकित्सा पर हों, मूत्र व सीरम स्टिरायड स्तरों की जांच कर स्टिरायड खुराक को निर्धारित किया जाये।

3. गहन दमा उपचार का नियोजन (सतत दमा)

वे रोगी जो हर समय दमा से पीड़ित रहते हैं और जिन्हें उपरोक्त वर्णित नियोजन-2 से लाभ नहीं होता तथा जिनकी हृदय गति ऊंची होती है, रक्त में आक्सीजन का दाब कम होता है, पानी की कमी और थकावट से ग्रसित होते हैं बहुत गंभीर स्थिति में होते हैं। इन्हें तुरंत अस्पताल में दाखिल कराना तथा उचित कृत्रिम सांस देने की व्यवस्था कराना

आवश्यक है। उपरोक्त रोगियों का उपचार वही है जो गंभीर श्वासपतन रेस्पिरेटरी फेल्यर के रोगियों का होता है। इसमें श्वास नलिकाओं का खोलना, उचित मात्रा में आक्सीजन देना, श्वसन विस्फोटकों तथा कॉर्टिकॉस्टेरायडों के टीके, तरल पदार्थ की पूर्ति, रक्त के पी. एच. को नियंत्रित रखना तथा, यदि आवश्यकता हो तो एक विशेष प्रकार के सांस लेने के यंत्र (वॉल्यूम साइकिल रेसपिरटेर) द्वारा सांस का आवागमन कराना सम्मिलित है। यह कार्य विशेषज्ञों का है। गंभीर श्वासपतन के सभी मामले तुरंत विशेषज्ञ प्राप्त चिकित्सालयों को सौंप देने चाहिएं। सतत दमा मुख्य रूप से निम्न कारणों से बनता है :

1. अनियंत्रित गहन संक्रमण।
2. एड्रीनालीन तथा आइसोप्रेनेलीन (सालबुटामॉल भी) जैसी औषधियों का अंधाधुंध उपयोग, जिससे उनका प्रभाव कम हो जाता है।
3. कॉर्टिकॉस्टेरायडों का उपयोग एकाएक बंद करना।
4. किसी एलर्जन का अत्यधिक प्रभाव।
5. गंभीर निर्जलीकरण।

यदि चिकित्सक और रोगी को इन बातों का ज्ञान है तो इस प्राणलेवा स्थिति से काफी हद तक बचा जा सकता है।

मैंने उपचार के कुछ नियोजनों का जिक्र किया है। फिर भी यह प्रत्येक चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह रोगी से उन दवाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करे जो उसे सबसे अधिक लाभ पहुंचाती हैं। बिना रोगी से पूछे कोई भी चिकित्सक इनका पता नहीं लगा सकता। चिकित्सक को इन औषधियों के गुण विज्ञान का अध्ययन करके रोगी को बताना चाहिए जो अंततः उसे औषधि को चुनेगा जो उसे लाभ देती है और साथ ही कम बुरा असर डालती है। कुछ औषधियां निश्चित रूप से स्थिति को बिगाड़ देती हैं। अतः दमा रोगियों को उनसे बचना चाहिए। ये निम्नलिखित हैं :

1. प्रोप्रेनालोल--हृदय रोगों तथा उच्च रक्तचाप में उपयोग की जाने वाली औषधि।
2. प्रोस्टेग्लेंडिन F2 एल्फा--गर्भपात के लिए उपयोग की जाने वाली औषधि।
3. H1 किस्म की एंटीहिस्टामिन-जो स्रावों को शुष्क करती है।

क्या दमा को रोका जा सकता है ? इसकी आज कौन सी विधियां उपलब्ध हैं ?

कुछ रोगियों में दमा के दौरों को रोका जा सकता है, पर इसके लिए उन्हें अनिश्चित समय तक डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट, सालबुटामॉल जैसी ब्रोंकोडाइलेटर औषधियों या एंटीएलर्जिक टीकों का इस्तेमाल करना होगा। कुछ मामलों में दौरे पैदा करने वाले एलर्जन कारकों से बचाव लाभदायक होता है। अधिकतर मामलों तथा बिना एलर्जी उत्पन्न होने

वाले दमा में कोई निश्चित बचाव विधि उपलब्ध नहीं है। डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट को प्रतिदिन नियमित सूंघने से यदि सबको नहीं तो कम से कम कुछ रोगियों को लाभ अवश्य हो सकता है।

दमा की प्रतिरक्षा चिकित्सा से क्या अभिप्राय है तथा वह इस रोग में कहां तक लाभदायक है ?

प्रतिरक्षा या अल्पसंवेदनशीलन चिकित्सा का आधार यह धारणा है कि यदि दमा पैदा करने वाले कारक एलर्जन की बढ़ती हुई थोड़ी-थोड़ी मात्रा लगातार रोगी के शरीर में प्रवेश कराई जाये तो उसके शरीर में इसे सहने (प्रतिरक्षण) की क्षमता आ जाती है जिससे भविष्य में इसका प्रभाव होने पर उसे दौरे नहीं पड़ते। इस धारणा के अंतर्गत कुछ ऐसे "अवरोधक प्रतिपिंड" शरीर में पैदा होते हैं जो एलर्जन और हानिकारक प्रतिपिंडों (आइजी-ई) के संयोग को रोकते हैं, जिससे दमा पैदा करने वाले रासायनिक पदार्थों का निष्कासन बंद हो जाता है। यह वास्तव में एक चित्ताकर्षक धारणा है। परंतु इसमें एक कमी यह है कि अवरोधक प्रतिपिंड के स्तर तथा लक्षणों में आये सुधार के बीच कोई संबंध नहीं है। इस विधि से उपचारित अनेकों व्यक्तियों के सीरम में अवरोधक प्रतिपिंड का स्तर तो काफी ऊंचा होता है परंतु लक्षणों में कोई कमी नहीं दिखाई देती। नून द्वारा सन् 1911 में मूलरूप से प्रस्तावित इस उपचार में कोई नवीनता नहीं है। यह उपचार केवल एलर्जी जनित दमा के निश्चित मामलों में ही कारगर है।

किसी रोगी में दमा पैदा करने वाली एलर्जी को पहचानने के लिए निम्नलिखित जांचों और अन्य आंकड़ों की आवश्यकता होती है :

अ. रोगी के किसी विशेष एलर्जन से प्रभावित होने पर एक से अधिक दौरों का स्पष्ट विवरण।

ब. उस एलर्जन से बनी वेक्सीन का रोगी की त्वचा में थोड़ी मात्रा में (प्रिक जांच) प्रवेश कराने पर सकारात्मक प्रतिक्रिया (लाली, सूजन) होनी चाहिए।

स. इस एलर्जन के विरुद्ध पैदा हुई आइजी-ई प्रतिपिंड रोगी के सीरम में उपस्थित होनी चाहिए।

द. इस एलर्जन को सूंघने पर रोगी में दमा प्रतिक्रिया होनी चाहिए।

प्रतिरक्षीकरण की विधि :

एलर्जन के पता लगने पर (इसके लिए अकेला त्वचा परीक्षण बिल्कुल भरोसे का नहीं है क्योंकि कितने ही व्यक्ति तथा रोगियों के सामान्य संबंधी भी इस परीक्षण को सकारात्मक प्रदर्शित करते हैं), रोगी में इस पदार्थ की थोड़ी, परंतु प्रति सप्ताह धीरे-धीरे बढ़ती मात्रा, प्रवेश कराई जाती है, जब तक कि वह इसकी अधिक से अधिक मात्रा को सहने योग्य न हो जाये। बाद में यही मात्रा एक माह के अंतराल पर अनिश्चित अवधि

तक दी जाती है।

इस उपचार का फल अत्यंत असंतोषपूर्ण है क्योंकि इससे ठीक होना तो बहुत दूर की बात है, यदि कुछ लोगों को आराम भी मिल जाये तो बहुत है। एक वर्ष से भी अधिक समय तक किये गये नियंत्रित अध्ययनों में इस उपचार के नतीजे पानी के इंजेक्शन (प्लेसिबो) से अधिक अच्छे नहीं थे। [17, 18, 19] हमने प्रतिरक्षीकरण चिकित्सा से 1000 दमा रोगियों का इलाज पांच वर्ष तक किया। उपचार के बाद उनमें से केवल 6 रोगी लक्षण रहित हो पाये। इसके बहुत कम प्रमाण हैं कि यह विधि दमा को ठीक कर सकती है। प्रारंभिक 2-3 माह में अवश्य रोगी कुछ आराम होने की बात करते हैं परंतु ज्यों-ज्यों उनका इस पद्धति से मोहभंग होता है वे फिर दमा की शिकायत करने लगते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि दमा का कोई निश्चित इलाज ज्ञात नहीं है। अतः उस विधि के उपयोग से जो बहुत ही मामूली आराम पहुंचाये, क्या लाभ है।

निम्न तालिका विभिन्न देशों में किये गये नियंत्रित अध्ययनों के नतीजों को दिखाती है :

दमा में प्रतिरक्षण चिकित्सा का पुनार्वलोकन

लेखक	*रोगियों की संख्या*	*अध्ययन की विधि*	*प्रतिजन*	*अध्ययन अवधि*	*निष्कर्ष % में सफलता*
फ्रेंकलैंड (1955)	193	डबल ब्लाइंड	बेक्टीरिया प्लेसिवो	1 वर्ष	वेक्सीन 58 प्लेसिवो 52
ब्रिटिश टीबी. एसोसिएशन (1968)	96	डबल ब्लाइंड	घरेलू धूल प्लेसिबो	1½ वर्ष	दोनों में समान निष्कर्ष
आस (1971)	80	डबल ब्लाइंड	घरेलू धूल प्लेसिबो	3 वर्ष	घरेलू धूल 67.3 प्लेसिबो 67.8
वूरेन (1971)	50	डबल ब्लाइंड	घरेलू धूल परागकण, प्लेसिवो	1 वर्ष	घरेलू धूल 67 परागकण 50 प्लेसिबो 75
मेनन (1980)	100	डबल ब्लाइंड	घरेलू धूल परागकण, प्लेसिवो	2 वर्ष	घरेलू धूल 20 परागकण 25 प्लेसिबो 35

इस तालिका को देखने से पता चलता है कि "वेक्सीन" या प्रतिजन तथा प्लेसिवो (पानी या नमक का घोल) दोनों के प्रयोग से समान नतीजे निकलते हैं। अतः लगता है दमा रोगी पर चिकित्सक द्वारा दिये गये भरोसे (प्लेसिबो का प्रभाव) का असर अवश्य होता है, भले ही वह थोडे समय के लिए हो।

5

दमा की रोकथाम

दमा के इलाज और उसकी रोकथाम के बारे में नवीनतम विचारधारा क्या है ?

एलर्जिक दमा के क्षेत्र में अनेकों व्यक्ति एलर्जी की रोकथाम या उसे दबाने के विभिन्न पहलुओं पर कार्य कर रहे हैं। सिद्धांततया यह कई प्रकार से किया जा सकता है।

अ. एलजर्नो के संपर्क से बचें--कहना आसान है पर करना मुश्किल। यह तभी संभव है जब कोई जीवन-पर्यंत किसी नियंत्रण कक्ष में बंदी रहे।

ब. वे समस्त कोशिकाएं (लिम्फोसाइट) रक्त से हटा दी जाएं जो विशेष रूप से एलर्जन से प्रतिक्रिया कर इम्यूनोग्लोबुलिन-ई प्रतिपिंड का निर्माण करती हैं। इस दिशा में कुछ कार्य केव्ज और उसके सहयोगियों ने अमेरिका[20] में किया है। यह मानव मात्र के लिए कितना लाभप्रद सिद्ध होगा, अभी मात्र अनुमान का विषय है।

स. सभी आइजी-ई प्रतिपिंडों को, लाभदायक प्रतिपिंडों को छोड़ कर, रक्त से निकाल दिया जाये (कल्पना मात्र)।

द. कोशिकाओं से आइजी-ई अणुओं के संयोग को रोक दिया जाये। इस क्षेत्र में अभी तक कोई प्रगति नहीं हुई।

क. प्रतिजन प्रतिपिंड (आइजी-ई) के संपर्क को रोक दिया जाये। प्रतिरक्षीकरण का यही कार्य है परंतु यह निष्फल सिद्ध हुआ।

ख. कोशिकाओं से रासायनिक मध्यस्थों में निष्कासन पर रोक लगा दी जाये। यह विधि कुछ मात्रा में सफल सिद्ध हुई है। डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट और उससे संबंधित औषधियां यही काम करती हैं।

हाल ही में जीवों पर किये गये प्रयोगों से पता चला है कि सामान्य जीवों के सीरम में कुछ ऐसे घटक मौजूद हैं जो जीवों में प्रायोजिक रूप से पैदा की गयी एलर्जी को रोकने में सक्षम हैं। अब तक अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान उन दमा रोगियों या जीवों पर केंद्रित रहता था जिनमें दमा कृत्रिम रूप से पैदा किया जाता था। इसके विपरीत अब हम सामान्य (दमा रोग विहीन) व्यक्तियों के अध्ययन में लगे हैं कि वे बिना दमा हुए किस प्रकार निरोग

रहते हैं। यह कितना सफल होगा, अभी हम नहीं कह सकते। आशा की किरण हमें अवश्य दिखाई दे रही है तथा मुझे विश्वास है कि निकट भविष्य में मानव जाति को इस रहस्यात्मक रोग से हमेशा के लिए छुटकारा मिल सकेगा।

6

निजी चिकित्सकों की दमा में भूमिका

दमा के इलाज में निजी चिकित्सकों की क्या भूमिका है ?

हमारे देश में निजी चिकित्सकों (फेमिली डॉक्टर्स) की परंपरा तेजी से समाप्त हो रही है। इसका मुख्य कारण तेजी से बढ़ता शहरीकरण और उसके दुष्प्रभाव हैं, जैसे, पारंपरिक मान्यताओं में कमी, चिकित्सकों में आपसी होड़ तथा उन पर रोगियों की श्रद्धा और आदर में कमी। दुर्भाग्य से आज निजी चिकित्सकों का स्थान आम चिकित्सकों ने ले लिया है। यह अध्याय सामान्य चिकित्सक तथा रोगी को दृष्टि में रखकर लिखा गया है और पांच मुख्य बातों पर आधारित है।

1. सामान्य चिकित्सकों को इस रोग के बारे में अधिक जानकारी होनी चाहिए और इसके इलाज में अधिक उपयोगी भूमिका निभानी चाहिए।
2. भारत जैसे देश में दमा विशेषज्ञों की अधिक आवश्यकता नहीं है क्योंकि एक समर्पित, सहानुभूतिपूर्ण एवं कुशल सामान्य चिकित्सक भी वही सब कुछ कर सकता है जो एक विशेषज्ञ करता है।
3. अधिकतर सामान्य चिकित्सकों तथा अस्पतालों के रेजिडेंट चिकित्सकों को दमा की बहुत कम जानकारी होती है। दमा अक्सर चिकित्सकों को परेशानी में डाल देता है। दमा के क्रानिक रोगी को देखकर काम के बोझ से दबा चिकित्सक झुंझला जाता है और असहायता की स्थिति में रोगी से जल्दी छुटकारा पाना चाहता है।

   इस रोग की अनिश्चितता तथा चिकित्सक द्वारा कोई निश्चित इलाज न कर पाने की मजबूरी अक्सर उनमें से कुछ में क्षोभ और अन्य में भय की भावना उत्पन्न कर देती है। इन भावनाओं को रोगी जल्दी भांप जाता है और उसमें अविश्वास की भावना घर कर जाती है। सामान्य चिकित्सक को, रोगी और उसके परिवार की पूरी जानकारी के कारण, रोगी और स्वयं में उत्पन्न विरोध, अपराध तथा आत्मविश्वास की कमी आदि भावनाओं को दूर करने का अच्छा अवसर मिलता है। अतः वे किसी भी विशेषज्ञ के मुकाबले में इन भावनाओं से अच्छी तरह निबट सकते हैं।

4. चिकित्सकों का मुख्य उद्देश्य रोगियों को अपनी दुविधा का स्वयं निवारण करने, उन्हें अपने को स्वयं संभालने के योग्य बनाने तथा उन पर निर्भर न रहने के बारे में शिक्षित करना है। अधिकतर दमा रोगियों की तंत्रिका प्रणाली बड़ी अस्थिर होती है। वे शीघ्र ही प्रसन्न मुद्रा से क्षोभ और फिर गहन अवसाद में डूब जाते हैं और हमेशा सहारे की तलाश में रहते हैं। चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह अपने मरीज में आत्मविश्वास जागृत करे और उसे अपने रोग को स्वयं संभालने के बारे में समझाये तथा यह भी कि उसे कब चिकित्सक से मदद लेनी है।
5. हर वह मौका जब रोगी को अस्पताल में भरती करना पड़े, उसके पूर्व इलाज की कमजोरी माना जाना चाहिए, बल्कि यूं कहिये, उसके चिकित्सक की।

7

आनुवंशिकता और दमा

दमा को वंशानुगत माना जाता है। आनुवंशिकता की दमा के विकास में क्या भूमिका है ? क्या दमा के आनुवंशिक आधार को स्पष्ट रूप से दिखाया जा सकता है ?

एलर्जी रहित दमा में आनुवंशिकता की भूमिका अस्पष्ट है। पुराने समय से एलर्जी जनित दमा के पैदा हाने में आनुवंशिकता की मुख्य भूमिका मानी गयी है। शरीर क्रियात्मक तथा प्रतिरक्षात्मक विचारधाराओं के विकास से बहुत पहले दमा, एलर्जी जनित शीत तथा बाल एक्जीमा रोग काफी मात्रा में होते थे। सिनेर्टस ने सन् 1650 में अपनी पत्नी के परिवार की लगातार तीन पीढ़ियों में दमा होने का जिक्र किया है। एलर्जिक दमा का आनुवंशिक नियंत्रण दो प्रकार का है। पहला एलर्जी से उत्पन्न होने वाले रोगों के पैदा होने की संभावना का समावेश और दूसरा विशेष एलर्जनों के प्रति संवेदनशीलता पैदा होने के गुण (अथवा अवगुण) का समावेश। जिन व्यक्तियों के मातृ और पितृ दोनों पक्षों में दमा रोग होता है. उनमें बहिरस्थ रोगों के युवावस्था से पहले ही लगने की संभावना होती है जिनमें केवल एक पक्ष में यह रोग होता है उनमें यह रोग कभी नहीं होता और यदि होता भी है तो जीवन के पिछले वर्षों में 50 प्रतिशत दमा रोगियों के परिवारों का इतिहास दमा से संबंध रखता है, जबकि सामान्य, बिना दमावाले परिवारों के केवल 14 प्रतिशत रोगी ही दमा से पीड़ित होते हैं। क्रूक, आर. ए. एंड वांडेरवीर, ए. स्यूमन सेंसिटाइजेशन जर्नल आफ इम्यूलाजी। 1 : 216, 1916 एलर्जी जनित दमा के आनुवंशिक पक्ष पर अनुसंधान करने वाले आधुनिक वैज्ञानिक इसका आनुवंशिक आधार तो मानते हैं परंतु अभी यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि यह अकेले एक जीन से वंशानुगत होता है या नहीं। वास्तव में एक से अधिक जीनों द्वारा इसके वंशानुगत होने की अधिक संभावना है। बहिरस्थ रोगों के विकास से संबंधित जीन या तो (1) प्रतिरक्षा अनुक्रिया जीन (एच एल ए लिंक्ड इम्यून रेसपोंस जीन) होंगे या, (2) इम्यूनोग्लोबुलिन-ई आईजी- ई नियंत्रक जीन होंगे। यह निश्चित है कि एलर्जी को नियंत्रित करने संबंधी जीनों की खोज अभी तक नहीं हो पायी है, दमा की तो बात ही अलग है।

8

बचपन का दमा

किसी ऐसे बच्चे की, जिसे बहुत पहले दमा हो चुका है, आने वाले जीवन में दौरों से छुटकारा पाने की क्या संभावनाएं हैं ?

दमा बचपन का एक अति सामान्य क्रानिक रोग है। आस्ट्रेलिया तथा पाश्चात्य देशों के 5-10 प्रतिशत (5-14 वर्ष के मध्य) बच्चे इस रोग से ग्रसित हैं। इन दमा रोगी बच्चों में से 2.5 प्रतिशत में रोग की अवस्था कष्टदायी होती है और 2.5 प्रतिशत को अति गंभीर दमा होता है। हमारे देश के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। उत्तर भारत में किए सीमित सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि भारत में बाल दमा रोग बहुत कम है (बाल जनसंख्या का 1-2 प्रतिशत)। इंग्लैंड तथा वेल्स में बाल दमा रोग के आम होने पर भी मृत्युदर बहुत कम (5 प्रति एक लाख) है। बच्चों में वयस्कों के मुकाबले दमा बिल्कुल अलग तरीके का होता है। बहुत से बच्चों में श्वसन प्रणाली में संक्रमण होने के साथ सांस लेने में आवाज आती है तथा उनकी श्वास नलिकाएं काफी मात्रा में अवरुद्ध होती हैं। शिशुओं में बुखार हो जाना, गला खराब होना, 2-3 दिन जुकाम रहना, 3-4 दिन सांस में आवाज आना और अंत में स्वस्थ हो जाना आम बात है। ऐसा वर्ष में कई बार हो सकता है। सन् 1953 में बोसेन ने मालूम किया कि एक वर्ष से कम आयु के ऐसे बच्चों में से 3-7 प्रतिशत बाद की जिंदगी में पूरी तरह दमा रोगी बन गये। इन बच्चों में से काफी संख्या में 2 या 3 बार रोग का हमला होने के बाद सांस की आवाज से छुटकारा पा जाते हैं। उन बच्चों में से, जिनमें सांस में आवाज की शिकायत 1-3 वर्ष के दौरान होती है, 18 प्रतिशत में आगे चलकर क्लासिकल दमा विकसित हो जाता है। जिनमें यह समस्या 3 वर्ष के बाद पैदा होती है, उनके 42 प्रतिशत में आगे चलकर दमा विकसित हो जाता है।

मैकनिकॉल तथा विलियम्स के अनुसार उनके द्वारा जांचे गये दमा रोगी बच्चों में से 25 प्रतिशत 14 वर्ष की आयु के बाद तक भी सांस में आवाज के लक्षण से ग्रसित रहे। उनका मत है कि जितनी कम उम्र में बाल दमा उभरता है उसका पूर्वानुमान उतना ही कठिन है। ये आंकड़े पाश्चात्य देशों के हैं। हमारे देश के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। लेखक ने 0-8 वर्ष के 200 बच्चों का अध्ययन किया, उनकी नियमित रूप से जांच की और जब उनमें से प्रत्येक 16 वर्ष की आयु का हो गया तो अंतिम विश्लेषण

किया। जिन बच्चों में 5 वर्ष की आयु से पहले दमा हो चुका था, उनमें से 52 प्रतिशत अपने बाल्यकाल में तीव्र दमा रोग से पीड़ित रहे, परंतु 16 वर्ष की आयु आते-आते वे इससे मुक्त हो गए। (इसका मतलब है कि 16 वर्ष की आयु तक 48 प्रतिशत की सांस में आवाज थी)। इसके मुकाबले में 5 वर्ष की आयु के बाद दमा से पीड़ित बच्चों में से 68 प्रतिशत 16 वर्ष की आयु तक सांस की आवाज से परेशान रहे (दूसरे शब्दों में, दमा से मुक्त होने वाले 32 प्रतिशत थे)। जब ये बच्चे 40 वर्ष की आयु तक पहुंचेंगे तो उनकी रोग लाक्षणिक स्थिति कैसी होगी, यह एक रोचक विषय है। इस प्रकार का अध्ययन किसी उचित निर्णय पर पहुंचने के लिए आवश्यक है। 40 वर्ष की आयु के बाद दमा से पीड़ित होने वाले व्यक्ति जीवनभर इससे छुटकारा नहीं पाते।

अंत में काफी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 5 वर्ष से कम की आयु में सांस की आवाज से पीड़ित बच्चों के 50 प्रतिशत में बड़ा होने पर यह परेशानी दूर हो जाती है। पूर्व-प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों में भी दमा से ग्रसित होना पर्यावरण के कई घटकों पर निर्भर करता है। मौसम व अन्य कारक भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। नम जलवायु इसके होने की संभावनाओं में वृद्धि करती है जबकि पहाड़ों पर रहना लाभदायक है। ठंडी और सूखी जलवायु दमा को बुरी तरह प्रभावित करती है। संवेदनशील व्यक्तियों में घरेलू धूल में पाई जाने वाली चिंचड़ी तथा पर्यावरण के अन्य एलर्जनों का दमा पैदा करने में निश्चित प्रभाव पड़ता है। दमा पीड़ितों की एक बड़ी संख्या संपन्न व शहरी व्यक्तियों में पाई गई है, जबकि पपुआ न्यू गाइना की आदिम जातियों तथा एस्कीमो में इसकी दर बहुत कम है। दमा के उभरने और उसे बनाये रखने में विषाणु संक्रमण तथा पर्यावरण प्रदूषण का बड़ा हाथ है।

यदि इन हानिकारक कारकों से सावधानी से बच सकें तो कोई भी सांस में आवाज वाला बच्चा बड़ा होकर इससे मुक्त हो सकता है। ऐसे कितने बच्चे दमा से मुक्त होने के बाद जीवन में आगे भी मुक्त रह पाते हैं इसकी अभी जानकारी नहीं है।

9

दमा की उपस्थिति

विभिन्न समुदायों में दमा कितना आम रोग है ? क्या दमा के पैदा होने में जाति का कोई प्रभाव होता है ? भारत में जातिप्रथा बहुत मजबूत है, क्या कोई ऐसी जाति है जिसमें दमा के विकास की अधिक संभावना हो ?

किसी एक समुदाय के अध्ययन से अलग-अलग समुदायों में दमा की स्थिति के बारे में कोई सही जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए सब समुदायों का एक साथ अध्ययन होना चाहिए। इन अलग-अलग समुदायों में दमा के विकास के बारे में कोई अंतिम निष्कर्ष निकालने में अत्यंत सावधानी बरतनी होगी क्योंकि अलग-अलग समय पर किये गये अध्ययनों के कारण स्थिति में परिवर्तन आ सकता है। तालिका 4 और 5 में अलग-अलग समय पर अलग-अलग देशों में बच्चों और प्रौढ़ों में दमा की उपस्थिति दिखाई गई है। आंकड़ों से ज्ञात होता है कि (अ) पुरुषों (बच्चों और प्रौढ़ों) में दमा अधिक होता है, (ब) न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा ब्रिटेन में इसकी मौजूदगी अधिक है, तथा (स) जापान, स्कैंडिनेवियन देशों तथा भारत में इसकी उपस्थिति दर लगभग 1 प्रतिशत है।

चूंकि अलग-अलग समय पर दमे की स्थिति के बारे में अलग-अलग तरह से अध्ययन किये गये हैं तथा उनमें आपस में तुलना करना संभव नहीं है, फिर भी कुछ समुदायों में इसकी उपस्थिति में समुचित अंतर दिखाई देता है। यह दो अध्ययनों की तुलना से काफी स्पष्ट होता है जिनमें से प्रत्येक पृथक प्रजाति के बारे में है। ट्रिस्टेन दा कुन्हा नामक टापू, जो 37° द. अक्षांश और 12° प. देशांतर पर केप-आफ-गुड होप से लगभग 2,000 मील पश्चिम में स्थित ब्रिटिश क्षेत्र हैं, के निवासी आदिम जाति के हैं। जब वहां स्थित जल सेना सन् 1817 में हटाई गई तो तोपखाने का एक कारपोरल विलियम ग्लास और उसकी पत्नी ने वहीं बसना पसंद किया। उनके साथ जल सेना से रिटायर हुए दो व्यक्ति और थे। ये ही वहां की आजकल की आबादी के आधार थे। सन् 1961 में टापू पर एक ज्वालामुखी धुआं उगलने लगा और सब टापूवासियों को ब्रिटेन भेज दिया गया। दो वर्ष बाद 14 व्यक्ति फिर टापू पर लौट आये। उनमें से 5 को दमा दोग था। इस टापू की आबादी में काफी

वृद्धि हुई और सन् 1971 में इस पर निवासियों की संख्या 286 थी। इस आबादी के अध्ययन के समय वहां मौजूद दमा 32 प्रतिशत था।

तालिका 4

बच्चों में दमा की दर

अध्ययन की गयी जनसंख्या	*आयु वर्ग*	*दर %*	*नर/मादा अनुपात*	*अध्ययनकर्ता व तिथि*
स्कैंडिनेविया				
482649 स्वीडिश	7-14	0.7	1.8/1	क्रेकपीलियन 1954
6032 नार्वेजियेन	7	1.8	1.01/1	मोलर 1955
27999 फिनिश	7-14	0.7	1.4/1	ऐरिकसन 1955
ब्रिटेन				
20958 बरमिंघम	5-18	4.2	2.0/1	मॉरिसन स्मिथ 1971
अमेरिका				
2001 इंडियाना	5-15	4.9	2.7/1	आरबीटर 1967
ऑस्ट्रेलिया				
16662 क्विन्सलैंड	5-6	5.4	लिखा नहीं	पेट्रिक 1962
952 न्यूजीलैंड	11-13	7.1	1.9/1	निलने 1959
जापान				
113112 टोक्यो	5-12	0.7	2/1	बाबा 1966
बारबेडास				
2731	5-15	1.1	लिखा नहीं	पियर्सन 1973
भारत				
2020 नयी दिल्ली	2-16	1.8	1.9/1	मेनन 1978
522 पटना	0-9	0.2	1/1.2	विश्वनाथन, आदि 1969

प्रशांत महासागर में स्थित टापू न्यू-गाइना का दक्षिण-पूर्वी भाग पपुआ न्यू-गाइना आस्ट्रेलियाई शासित प्रदेश है। यह कर्क और मकर रेखाओं के मध्य स्थित है तथा पर्वत श्रेणियों से भरा है। इसकी सबसे ऊंची चोटी माउंट विक्टोरिया (13,120 फुट) है। यहां

तालिका 6

वयस्कों में दमा की दर

अध्ययन की गयी जनसंख्या	*आयु वर्ग*	*दर (%)*	*नर/मादा अनुपात*	*अध्ययनकर्ता व तिथि*
स्कैंडिनेवियर				
1620 फिनलैंड	40-64	1.1	1/1.3	हती 1965
41679 उप्पासला	30-64	2.0	1/1.2	इर्नेल 1968
ब्रिटेन				
4250 लंदन	10 +	2.0	-	फ्राई 1961
3696 लंदन	12 +	5.4	1.1/1	ग्रेग 1971
अमेरिका				
5290 मिचिगन	15 +	4.1	1.0/1	बोर्डर 1962
7330 आयोवा	20 +	9.9	1.4/1	स्मिथ 1965
भारत				
1398 पटना	30-49	4.5	-	विश्वनाथन, आदि 1965
4320 दिल्ली (यूनिवर्सिटी क्षेत्र)	17 +	2.1	1.8/1.2	मेनन (अप्रकाशित)

वर्षा बहुत अधिक होती है तथा रबड़, कोपरा, नारियल, कोका, मसाले, अदरक, केले तथा अन्य फल बहुतायत में पाये जाते हैं। पहाड़ी इलाके के लोग पपुआ निवासी हैं जब कि तटवासी मिली-जुली जाति के हैं। पहाड़ी इलाके के पपुआ निवासियों पर किये गये अध्ययन से पता लगा कि उनके बच्चों में दमा रोग लगभग नहीं के बराबर था जबकि वयस्कों में इसकी दर 0.3 प्रतिशत से भी कम थी।

ये दोनों प्रजातियां अलग-अलग हैं। तो फिर दोनों में दमा की दरों में इतने अधिक अंतर का क्या कारण है ? इनमें अवश्य जातीय अंतर है। ट्रिस्टान-दा-कुन्हा की श्वेत काकेशियन प्रजाति में पपुआ न्यू-गाइना के आदिवासियों की तुलना में दमा रोगियों की

संख्या निश्चित रूप से अधिक है। इन दोनों जगहों का पर्यावरण भिन्न है। इससे सहज यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्वेत प्रजाति में आदिम प्रजाति के मुकाबले दमा प्रभावित करने वाले एक या उससे अधिक कारक मौजूद हैं। इन दोनों प्रजातियों में एलर्जन या संक्रमण से प्रभावित होने में कोई अंतर नहीं है। अतः इससे यह प्रतीत होता है कि दमा की दरों में अंतर शारीरिक या आनुवंशिक है, पर्यावरण संबंधी नहीं। उत्तरी अमेरिका की कुछ आदिम जातियों और एस्कीमों (0.08 प्रतिशत) में दमा की उपस्थिति दर कम है परंतु ब्रिटेन में बसे प्रवासियों पर किये अध्ययनों से पता लगा है कि ब्रिटेन में बसे काली-चमड़ी वाले प्रवासियों के बच्चों में, उसी आयु वर्ग के श्वेत बच्चों के मुकाबले में, दमा की दर अधिक है। बहरहाल, आनुवंशिक संवेदनशीलता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

भारत में हिंदुओं की विभिन्न जातियों की तो बात ही छोड़िये, यहां किसी भी बड़े समुदाय में दमा की उपस्थिति के बारे में कोई अध्ययन नहीं किया गया। उपलब्ध आंकड़ों से ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में दमा की दर तुलनात्मक रूप से काफी कम (1-2 प्रतिशत) है। लेखक ने अपने अस्पताल में आये 5,000 रोगियों पर एक अध्ययन किया। इन रोगियों का जाति के अनुसार विभाजन तालिका-6 में दिया गया है।

तालिका (6 व 6अ) से पता लगता है कि दिल्ली क्षेत्र के अस्पतालों में आये दमा रोगियों में सबसे अधिक संख्या वैश्य (बनिया) जाति की है। अध्ययन की अवधि में अस्पताल में आये मरीजों में 30 प्रतिशत वैश्य थे। इनमें से दमा रोग से पीड़ित वैश्य जाति के मरीजों का प्रतिशत 40 था।

तालिका-6

अस्पताल (दिल्ली) में आये 5,000 दमा रोगियों का धर्म और जाति के अनुसार विभाजन

धर्म व जाति	*संख्या*	*प्रतिशत*
1. हिंदू	4,100	82
अ. ब्राह्मण	750	15
ब. खत्री	652	13
स. वैश्य	2,020	40
द. अन्य	678	14
2. सिख	600	12
3. मुसलमान	245	4.9
4. ईसाई	55	1.1

तालिका - 6 अ

तालिका 6 में वर्णित अध्ययनों की अवधि में अस्पताल में आये कुल मरीजों (सब प्रकार के रोगों) का धर्म और जाति के आधार पर विभाजन

	जाति	*प्रतिशत*
1.	हिंदू	70.1
	अ. ब्राह्मण	15.8
	ब. खत्री	11.2
	स. वैश्य	29.6
	द. अन्य	13.5
2.	सिख	17.4
3.	मुसलमान	10.5
4.	ईसाई	2.0

जब तक देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या के उचित सर्वेक्षण नहीं किये जाते, अस्पताल में आये मरीजों के विश्लेषण पर आधारित इस अध्ययन की सच्चाई की जांच नहीं हो सकती। किसी निश्चित निर्णय पर पहुंचने से पूर्व इस प्रकार के विश्लेषणों में निहित कमियों पर ध्यान देना आवश्यक है। फिर भी, उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारत में अन्य जातियों के मुकाबले में वैश्यों में दमा रोग की अधिकता है। इस जाति के व्यापक अध्ययन से इस दिशा में काफी जानकारी मिल सकती है।

10

मनोवैज्ञानिक कारण

भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को बहुधा दमा का कारण माना जाता है। क्या इनका दमा से कोई संबंध है ?

प्रतिरक्षा शरीरक्रिया विज्ञानी प्रभाव (दमा विकसित होने की संभावना) के आधार के अभाव में, किसी भी मात्रा में भावनात्मक दबाव या कष्ट दमा के दौरे को नहीं उभार सकता। केवल पूर्व प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों में ही, जैसा कि एलर्जन व अन्य पदार्थों के मामलों में होता है, दमा का दौरा भावनात्मक कारणों से पैदा हो सकता है। पूर्व प्रवृति वालों या दमा रोगियों में कई प्रकार की भावनात्मक स्थितियां इसे उभार सकती हैं, जैसे, चिंता, निराशा, अपराध भावना, गुस्सा, असफलता, प्रसन्नता आदि। कई दमा रोगियों को हंसने से भी दौरा पड़ जाता है। वे प्रसन्नता की मुद्रा से लेकर असीम अवसाद की भावनाओं के झूले झूलते रहते हैं। तथा अपनी भावनाओं को आसानी से प्रकट नहीं करते। ऐसा कई नियंत्रित अध्ययनों से सिद्ध हो चुका है। कैपल के 6डी पर्सनैलिटी प्रोफाइल अध्ययनों तथा रॉज़ेनविंग के पिक्चर फ्रस्ट्रेशन अध्ययनों से पता लगा है कि दमा रोगियों में दबी हुई आक्रामक भावना तथा अपराध बोध सामान्य व्यक्ति से अधिक होता है। इनमें से बहुत से डरपोक, संवेदनशील तथा वहमी होते हैं। वे दूसरों पर निर्भर रहने वाले, तारीफ पसंद तथा तारीफ न मिलने पर निरुत्साहित होते हैं। आंतरिक रूप से आक्रामक होते हुए भी किसी आक्रमण या हमले का सामना होते ही वे मलिन हो जाते हैं। कोई भी अरोचक (भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक) स्थिति उनमें दौरा पैदा कर सकती है। कुछ इन परिस्थितियों को पैदा कर अपने दौरे को दूसरों से सहानुभूति, सहमति, प्यार तथा महत्व प्राप्त करने का साधन बनाते हैं। शिकागो-साइकोएनेलेटिक स्कूल ने "दमायुक्त व्यक्तित्व" को परिभाषित किया है। उनके अनुसार दमा रोगी बच्चे का मुख्य द्वंद्व उसका मां के प्रति स्नेह तथा रोने की इच्छा में व्यवधान के कारण उत्पन्न होता है जो असामान्य सांस लेने की क्रिया के रूप में प्रकट होता है।

कितने ही युवा तथा वयस्क दमा रोगियों को यौन क्रिया में अधिक अभिरुचि होती है, परंतु आत्मविश्वास की कमी के कारण वे यौन संसर्ग से डरते हैं। कइयों में शारीरिक संबंधों के बारे में भय व अपराध बोध की भावना होती है। इस हीनभावना को छिपाने

के लिए कुछ महान प्रेमी, या फिर यौन क्रिया के दिग्गज बनने का नाटक करते हैं जब कि वास्तविकता यह है कि वे समय पर निश्चित रूप से असफल रहते हैं। इन हीन भावनाओं और नैराश्य से उनकी सांस में आवाज का लक्षण पैदा हो जाता है। 500 में से 150 पुरुष सतत दमा रोगियों (30-50 वर्ष की आयु के मध्य) ने माना कि उन्हें सदैव संभोग के समय दौरा उठने का भय लगा रहता था--वह चाहे स्वस्त्रीगमन हो या परस्त्रीगमन। उन्होंने यह भी माना कि उनकी पत्नियां या सहभागिनियां भी इन दौरों से चिंतित रहती थीं, जिससे उनकी कामेच्छा पर भरपूर प्रभाव पड़ता था।

एक मनोविश्लेषक द्वारा विक्षिप्त दमा रोगियों के साथ किये गये साक्षात्कार से पता चलता है कि माता-पिताओं में विशेष कर माताओं में से 2 प्रतिशत में अपराध भावना ही परगमन का मुख्य कारण है। इन आंकड़ों से जो भी निष्कर्ष निकले, लेखक के मतानुसार ये मनोवैज्ञानिक या भावनात्मक समस्याएं मनुष्य की अपनी उपज हैं, जिनका मुख्य कारण शहरीकरण तथा बाल्यकाल की आत्म अनुशासनहीनता है। कुछ भी हो, भारतीय दमा रोगियों में इन कारणों से रोग पैदा नहीं होता । हां, कुछ संपन्न दमा रोगी इन कारणों पर सहमति अवश्य प्रकट करते हैं। सामाजिक तथा भावनात्मक दबाव, भारतीय परिवेश में कहां तक दमा पैदा करते हैं, अभी भी अध्ययन का विषय है।

भारतीय परिस्थितियों में मानसिक दबाव हटाने में सुनियंत्रित जीवनयापन (भोजन व मनोरंजन सहित), जीवन गति को मंद रखना, मनन, एकाग्रता तथा नियमित श्वास क्रिया का अभ्यास निश्चित रूप से सहायता करते हैं। इसके लिए बचपन से ही इन्हें सीखना और पालन करना आवश्यक है। साथ ही लेखक की धारणा है कि दमा रोगियों की मनोदशा में कोई असमानता नहीं होती (या फिर उतनी ही असमानता होती है जितनी दमा रहित व्यक्तियों में) तथा उनमें से बहुत से उच्च बौद्धिक, सामाजिक और शारीरिक स्तरों तक पहुंच जाते हैं। देश में, ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं।

11

सामान्य सूचना

दमा में श्वास अभ्यास

दमा के साधारण दौरों को रोकने में श्वास-अभ्यासों का बड़ा महत्व है। "उदरीय श्वास" लेने का तरीका सब दमा रोगियों को सीखना चाहिए। उन्हें यह अभ्यास प्रतिदिन सुबह-शाम कम से कम 15-20 मिनट तक करना चाहिए। रोगी अपनी हथेलियां पेट पर रखकर सीधा बैठे। श्वास निकालते समय वह अपने पेट को रीढ़ की हड्डी की ओर दोनों हथेलियों से जितना संभव हो दबाये। एक स्थिति ऐसी आयेगी जब वह और अधिक सांस बाहर नहीं निकाल सकता और अंदर सांस लेना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। सांस को अंदर खींचते समय उसे अपनी हथेलियां हटा लेनी चाहिए, जिससे पेट बाहर की ओर आ जाये और हवा फेफड़ों में भर जाये। इस अभ्यास से सांस लेने और निकालने में मध्यपट (डाइफ्राम) का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इससे फेफड़े के उन निचले भागों को पूरी हवा मिलती है जो दमा में अक्सर पूरी तरह उपयोग नहीं हो पाते।

भोजन संबंधी नियम

रोगी भोजन में परहेज के बारे में अक्सर पूछते हैं, ताकि इससे उन्हें लाभ हो सके। यदि निम्नलिखित बातों का नियमित रूप से ध्यान रखा जाये तो ये दमा के दौरों से बचाने में सहायक हो सकते हैं :

1. मसालेदार, तले हुए, चर्बीयुक्त भारी भोजन से बचें। खट्टी और ठंडी चीजों से भी बचा जाये।
2. अधिक पेट भरकर न खायें।
3. रात्रि का खाना बहुत हल्का हो और उसे सोने से 3 घंटे पूर्व ग्रहण करना चाहिए ताकि नींद आने तक पेट लगभग खाली हो जाये।
4. दिन में काफी लंबे समय तक पेट खाली रखना ठीक नहीं है। दो या तीन बारी के भारी भोजन की अपेक्षा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में कई बार खाते रहना हितकर है।

क्या सांस में आवाज वाला हर व्यक्ति दमा रोगी है ?

एक पुरानी कहावत "सांस की हर आवाज दमा से नहीं होती" सत्य है। हर वह व्यक्ति जिसे सांस लेने में परेशानी हो या उसमें आवाज आये, यह जरूरी नहीं कि दमा रोगी हो। बच्चों में दमा के दौरे बार-बार खांसी और सांस में आवाज के रूप में होते हैं। परंतु दूसरी बीमारियों में भी इसी प्रकार के लक्षण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए गंभीर श्वसनी शोथ (छोटी वायु नलिकाओं में संक्रमण), श्वसनिका में किसी बाहरी पदार्थ का सांस द्वारा पहुंच जाना, किसी ग्रंथि का श्वसनिका पर दबाव, आदि।

वृद्धों में प्रायः धूम्रपान से उत्पन्न क्रानिक श्वसनिका शोथ तथा वातस्फीति (एम्फाइसीमा) भी दमा के अलावा सांस में आवाज का कारण हैं।

दमा रोग से मिलता जुलता अन्य रोग है हृदयात (हार्ट फेल्योर)। ऐसी स्थिति में सांस लेने में परेशानी और आवाज वाला रोगी दमा का मरीज है या नहीं, यह सुनिश्चित करना चिकित्सक का काम है। अतः रोग का सही निदान कराने के लिए चिकित्सक के पास जाना आवश्यक है।

बाल दमा रोगी के क्या विशेष लक्षण हैं ?

यदि माता-पिता में से एक या दोनों किसी एलर्जी जनित रोग से ग्रसित हैं तो उनकी संतानों में से कुछ को दमा या कोई अन्य एलर्जी जनित रोग होने की संभावना है। दमा रोग होने की संभावना वाले बच्चे का जल्दी ही पता लगाना आवश्यक होता है ताकि उसे इस रोग से बचाने के उपाय किये जा सकें। यदि निम्नलिखित में से एक या अधिक लक्षण बच्चे में मौजूद हों तो उसमें दमा विकसित होने की संभावना है :

1. बच्चे में असामान्य और लगातार रहने वाला उदरशूल।
2. भोज्य सामग्री को बार-बार बदलने की आवश्यकता।
3. शिशु को अज्ञात कारणों से अपच या दस्त।
4. अधिक मात्रा में उल्टियां।
5. अज्ञात कारणों से त्वचा पर चकत्ते या पित्ती; या
6. बार-बार ठंड लगना या नाक बहना।

दमा की संभावना वाले बच्चे को, या फिर जिसे दमा होना निश्चित है, भोजन में ठोस पदार्थ केवल 6 माह की आयु के बाद ही देने चाहिएं। उसे दूध उबाल कर दें। साधारणतया एलर्जी उत्पन्न करने वाले पदार्थों जैसे, अंडा, गेहूं, मछली, कोका आदि जितने समय बाद दिये जायें उतना ही अच्छा है।

बच्चे के सोने का कमरा धूल से जितना साफ रखा जा सके, रखें। पालतू जानवरों को बच्चे के कमरे में न आने दें। वे खिलौने, जिनमें कोई पदार्थ भरा हो, बच्चे से अलग रखें। जब बच्चा घर से बाहर हो तभी घर की सफाई करें। ऐसा ही सफेदी या रंग करते

समय करना चाहिए। अन्य बच्चों की तरह ही दमा रोगी बच्चे को भी कुकर खांसी, डिप्थीरिया, टिटनेस, टायफाइड, हैजा, पोलियो, चेचक आदि रोगों के टीके लगवायें। छाती में हुए संक्रमण का जल्दी से जल्दी ठीक तरह से उपचार किया जाये दमा रोका जा सकने वाला रोग है। बस, रोगी का इस संबंध में पूरा ध्यान रखने की जरूरत है--बच्चों के मामले में मां-बाप द्वारा और मां-बाप के मामले में चिकित्सक द्वारा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. एस. राधाकृष्णन, ***दी भागवद् गीता;*** लंदन, जार्ज एलन एंड अनविन लि., IV 17, पृष्ठ 162; 1948
2. टी. नलाइनाथन, "ए ट्रीटमैंट विदाउट ड्रग्स", **अस्थमा;** कोलम्बो, गवर्नमेंट हास्पिटल फार इंडिजिनस मेडिसन (वर्ष अज्ञात)
3. स्वामी शिवानन्द सरस्वती, ***अस्थमा इट्स काजेज एंड ट्रीटमैंट;*** ऋषिकेश, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, 1963
4. सीबा फाउंडेशन स्टडी ग्रुप नं. 38, ***आइडेंटिफिकेशन आफ अस्थमा;*** एडिनबर्ग, लिविंगस्टोन, 1971
5. स्केडिंग, जे.जी., "डेफिनेशन एंड क्लीनिकल केटेगराइजेशन आफ अस्थमा", ***ब्रोंकियल अस्थमा;*** संपादक: ई. बी. वेज तथा एम. एस. सैगल, यू. एस. ए. : लिटिल ब्राउन एंड कंपनी, पृष्ठ 21, 1976
6. मेनन, एम. पी. एस., "टेट्रासाइक्लिन अस्थमा", ***क्लीनिकल एलर्जी;*** लंदन, ब्लैकवेल, खंड 7, पृष्ठ 18, 1977
7. मिडिलटन, ई., "आटोनोमिक इम्बेलेंस इन अस्थमा", ***एडवांसेज इन इंटरनल मेडिसिन;*** यू. एस. ए., खंड 18, पृष्ठ 177, 1972
8. नताशा, डी. तथा मेनन, एम. पी. एस., "दी माइट फौना आफ इंडियन हाउस डस्ट", ***एस्पेक्ट्स आफ एलर्जी एंड एप्लाइड इम्यूनोलाजी;*** दिल्ली, आई. सी. ए. आई., खंड 6, पृष्ठ 51, 1973
9. फ्लोयर, जोन, ***ए ट्रिटाइज आफ दी अस्थमा;*** तीसरा संस्करण, लंदन, आर. विलकिंस तथा डब्लू. जे. इमनिस, पृष्ठ 82, 1926
10. अश्विनी कुमार, "दी बेसिस आफ बीटा एड्रीनर्जिक ब्रांकोडाइलेशन", ***दी जरनल आफ फार्मेकालाजी एंड एक्सपेरीमेंटल थैरेप्यूटिक्स;*** यू. एस. ए., खंड 206, पृष्ठ 528, 1978
11. पेपिस, जे., "नान इमिजियेट अस्थेमेटिक रियेक्शंस", ***ब्रांकियल अस्थमा;*** संपादक: ई. बी. वेज तथा एम. एस. सैगल, यू. एस. ए., लिटिल ब्राउन एंड कंपनी, पृष्ठ 249, 1976
12. मेनन, एम. पी. एस., "डूअल अस्थेमेटिक रेसपांस टू प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा" ***दी एनाल्स आफ एलर्जी;*** यू. एस. ए., खंड 39, पृष्ठ 351, 1977

13. मेनन, एम. पी. एस., "डिलेड अस्थेमेटिक रेसपांस टू इनहेलेंट एलर्जन", ***क्लीनिकल एलर्जी;*** लंदन, खंड 7, पृष्ठ 365, 1977
14. मेनन, एम. पी. एस., अप्रकाशित आंकड़े
15. मेनन, एम. पी. एस., "अस्थमा अर्टिकेरिया ड्यूरिंग डाइसोडियम क्रोमोग्लाइकेट ट्रीटमेंट", ***स्कोंडिनेवियन जरनल आफ रेसपिरेटरी डिजीजेज;*** डेनमार्क, खंड 58, पृष्ठ 145, 1977
16. नून, एल., "प्रोफिलेक्टिक इनोकुलेशन अगेंस्ट हे फीवर", ***लेन्सेट;*** खंड 1, पृष्ठ 1572, 1911
17. फारगेक्स एंड स्वान, "ए रिपोर्ट फ्राम दी रिसर्च कमेटी आफ ब्रिटिश ट्यूबरक्लोसिस एसोसिएशन", ***ब्रिटिश मेडिकल जरनल;*** खंड 3, पृष्ठ 774, 1968
18. तुचिंदा और चाइ, ***जरनल आफ एलर्जी;*** यू. एस. ए., खंड 51, पृष्ठ 131, 1973
19. फोन्ताना एट एल, जे. ए. एम. ए., खंड 195, पृष्ठ 985, 1966
20. केन्ज, डी. एच., "कंट्रोल आफ I_gE एंटीबाडी प्रोडक्शन बाइ सप्रेसर सब्सटेंसेज", ***जरनल आफ एलर्जी एंड क्लीनिकल इम्यूनोलाजी;*** यू. एस. ए., खंड 62, पृष्ठ 44, 1978
21. एम. अश्विनी कुमार, "एक्टीविटी एंड एनर्जी टर्नओवर इन एयरवेज स्मूथ मसल, इन्फ्लूएंस आफ एसिटाइलचोलीन एंड आइसोप्रिनालीन", ***जरनल आफ फार्मेकालाजी एंड एक्सपेरिमेंटल थैरेप्यूटिक्स;*** यू. एस. ए., खंड 202, पृष्ठ 125, 1977
22. एम. अश्विनी कुमार, "दी फेट आफ सेल कैलशियम ड्यूरिंग बी-एड्रीनर्जिक स्टिम्यूलस-रिलेक्सेशन कपलिंग इन केनाइन एयरवेज स्मूथ मसल", ***जरनल आफ फार्मेकालोजी एंड एक्सपेरिमेंटल थैरेप्यूटिक्स*** (प्रेस में)

तरंग प्रिंटर्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित